ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510   डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30   पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 213   जुलाई 2021

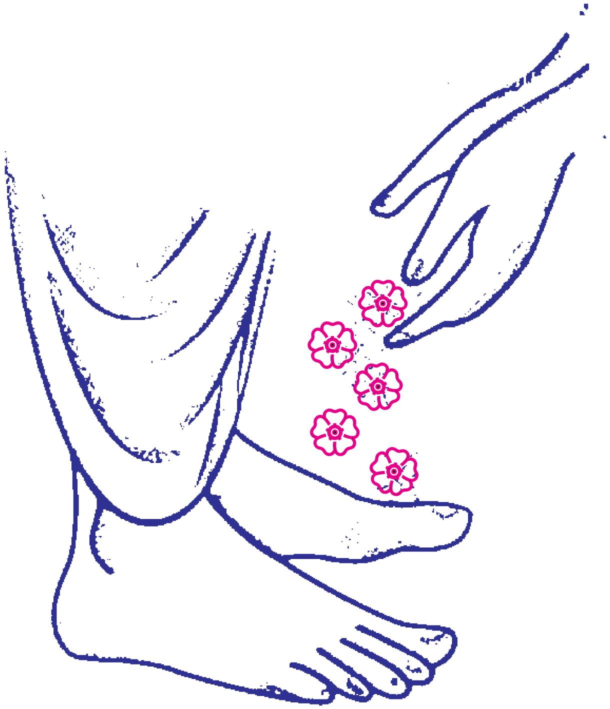

तस्मै श्री गुरुवे नमः

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्टीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 213
जुलाई 2021

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	समकालीन निःशक्त विमर्श और वीमा नाटक (पुस्तक समीक्षा)	डॉ. अनिल कुमार बारिया (समीक्षक)	04
3.	दलित अवधारणाओं का नया दौर	डॉ. इकरार अहमद	07
4.	दृश्य एवं श्रव्य मीडिया के विज्ञापनों के प्रभाव का आर्थिक विश्लेषण	पूजा जैन	15
5.	हिन्दी व्यंग साहित्य के विकास में हिन्दी व्यंग्यकारों का योगदान	डॉ. अनामिका कतरोलिया	20
6.	भूमंडलीकरण से बदलते गाँव सामाजिक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य	डॉ. दीपिका परमार	22
7.	कविताएँ		24
8.	लघुकथा		25

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम - आश्वस्त,
खाते का नं.- 63040357829
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेगा।

अपनी बात

भारत में यदि शिक्षा का इतिहास देखा जाये तो पायेंगे कि प्राचीन समय में सर्वोच्च शिक्षा का ऐसा ताना–बाना नजर आता है जिसके कारण भारत विश्व पटल पर प्रतिष्ठित था। अखण्ड भारत में तक्षशिला और नालंदा जैसे शिक्षा–केन्द्रों का विश्व भर में सम्मान था।

इस्लाम के आगमन के बाद भी हमारे यहाँ ज्ञान का दीप प्रज्वलित रहा। ब्रिटिश शासनकाल में यद्यपि हमारी शिक्षा का झुकाव पाश्चात्य शैली की तरफ हुआ जरूर परन्तु उसके स्तर में गिरावट नहीं आई। उस दौर में भाषाएं धर्म से नहीं जोड़ी जाती थी और शिक्षा को ज्ञानार्जन का ही माध्यम समझा जाता था।

भारत की महान सांस्कृतिक विरासत के स्थायी मूल्य भारत के बुद्धिजीवी वर्ग को प्रेरणा देते रहे हैं। चाहे उपनिषदों के मूल मंत्र 'चरैवेति–चरैवेति' को ले या बुद्ध के 'बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय' को ले या नानक, कबीर, संत रविदास आदि संतों की करुणा और समतामूलक, जनवादी, मानवतावादी क्रांतिकारी वाणी को ही ले, प्रत्येक दुःखी प्राणी के आंसू पोछना ही हमारे जीवन की सार्थकता है। शिक्षा का मूल आधार जीवन मूल्य और नैतिकता रहे है। इसी के उन्नयन के लिये विद्यार्थियों को संस्कारित किया जाता रहा है। व्यक्ति के शिक्षित होने का मतलब होता है कि उसमें वे सभी गुण व विशेषताएं विद्यमान होंगी जो मानवीयता, मनुष्यता या इंसानियत के लिये आवश्यक है।

विगत कुछ दशकों से ये आस्थाएं धीरे–धीरे टूट रही है और नई आस्थाएं बनी नहीं है परिणामस्वरूप मूल्यहीनता या नैतिक अराजकता की स्थिति बनती दृष्टिगोचर हो रही है।

हमारे यहाँ संबंधित संस्था–विभाग, सिस्टम में दोष है, कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती है लेकिन यह सिस्टम बनता तो है नियम कानून, प्रावधान आदि से लिहाजा ऐसा कहकर संबंधित संस्था–विभाग या व्यक्ति बगैर किसी पर सीधा आरोप लगाये स्वयं का बचाव कर लेते है। विदुर महाभारत में कहते हैं–'उनसे सावधान रहो, जो कहते कुछ है, करते कुछ है।' प्रश्न उठता है कि जिस समाज में कानून का भय नहीं होता वहाँ अपराध रोकने के लिये क्या समाज में चेतना लाने की आवश्यकता है, क्या सामाजिक–धार्मिक संस्थाएं यह कर सकती है? हम गलत करने वालों की महत्ता से अनभिज्ञ हो सकते हैं लेकिन यह भी सही है कि छोटे का मतलब महत्वहीन नहीं होता। इसलिये आप जिस कार्य/गतिविधि पर विश्वास करते है, उसके पक्ष में खड़े हो।

खेतों में फसल उत्पन्न करने के लिये बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। मशीन के दो स्वरूप है–ट्रैक्टर और बुलडोजर जिसे कहीं–कहीं रोड रोलर भी कहा जाता है। ट्रैक्टर निर्माण का कार्य करता है, परंतु गलत हाथों में पड़ा रोड रोलर सड़क का निर्माण नहीं करते हुए तोड़–फोड के काम में भी लाया जाता है।

शिक्षा–संस्कार से विकसित सूझ–बूझ को लेकर एक प्रसंग है–एक व्यक्ति अपने तीन बेटों की परीक्षा लेने के उद्देश्य से लम्बी यात्रा पर जाने से पहले अपना धन तीनों बेटों को बराबर–बराबर बांटकर जाता है। यात्रा से लौटकर वह हिसाब मांगता है, जैसा कि पहले से तय था। एक बेटा अपने व्यवसाय का ब्यौरा देता है, उसे व्यवसाय में घाटा हुआ है। दूसरे को आंशिक लाभ मिलता है। तीसरे ने धन को सुरक्षित रखने के लिये उसे धरती में गाड़ दिया था। अतः वह धन जस का तस उसे लौटा देता है। पिता इस तीसरे बेटे से नाराज होता है। घाटा लगने वाले से भी वह नाराज नहीं है। उस दौर में सिक्के को टैलेंट कहते थे। प्रतिभा का उपयोग नहीं करना अनुचित ठहराया जाता है। प्रतिभा का उपयोग करते हुए, उसे निरंतर मांजना होता है। प्रतिभा कोई दैवीय देन नहीं है। मनुष्य स्वयं उसका उपार्जन करता है और निरंतर उसे मांजकर बेहतर बनाता है।

– डॉ. तारा परमार

समकालीन नि:शक्त विमर्श और वीमा नाटक

पुस्तक समीक्षा

– डॉ. अनिल कुमार बारिया (समीक्षक)

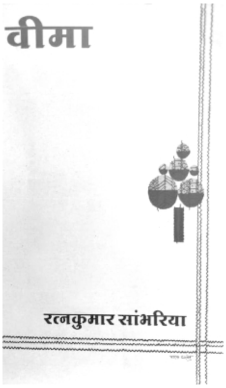

नाटककार रत्नकुमार सांभरिया का 'वीमा' नाटक समकालीन निःशक्त, स्त्री और दलित विमर्शों को समेटे हुए डॉ अम्बेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष के तीनों सिद्धांतों से आप्लावित चेतना का सुखद अहसास कराता है। एक सक्षम सचेत नाटककार के रूप में सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्धता, लोकतांत्रिक मूल्यों और मानव स्वतंत्रता के प्रति उनकी दृष्टि नावक के तीर के समकक्ष है। नाटक की रचनात्मक ऊर्जा में कहीं भी स्थिरता और अव्यवस्था के प्रति झुकाव दृष्टिगोचर नहीं होता हैं। अपितु नित नवीन ऊर्जा में सन्नद्ध, अधिक ऊर्जावान और गतिशील रचनाकार के रूप में अपनी नवीन 'थीम' से ऑडियंस की नीरसता को तोड़कर नए पाठकों की लम्बी फेहरिस्त बनाने में सक्षम सांभरिया के 'वीमा' नाटक में सबसे अधिक गौर करने लायक बात है, केन्द्रीय पात्रों की जीवन के प्रति अटूट आस्था और एक बेहतर मानवीय जीवन के प्रति अथक संघर्ष की जिजीविषा। कहना होगा कि यहां संघर्षधर्मी जिजीविषा अंततः संघर्षधर्मी सूत्र की सृष्टि करती है । घर का साझा सपना संजोने वाले पति–पत्नी का नया संकल्प, सच्चे प्रेम और आदर्शों के लिए समस्त प्रलोभनों से इतर जीवन संघर्ष का एक वृहत्तर सामाजिक संदर्भ हैं। जिसमें प्रकारान्तर से समय की कठिन चुनौतियों से जूझने का नवाचार प्रतिपादित होता है। नाटककार ने 'वीमा' में पात्रों के संघर्ष को एक वृहत्तर आयाम दिया है तथा पाठकों की चेतना को झकझोरने का सार्थक प्रयास किया है। समीक्ष्य नाटक चेतना के तीन स्तरों का स्पर्श करता है। निःशक्त विमर्श, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श । यहाँ तीनों विमर्शों की संघर्ष गाथा को एक साथ समावेशित कर समकालीन दौर में एक कालजयी कृति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

नाटक का नामकरण 'वीमा' केन्द्रीय पात्र है, फिर भी नाटककार ने संघर्ष की राह जमन वर्मा के लिए निश्चित की है। ज्योतिहीन जमन वर्मा और वीमा पति–पत्नी की यह गाथा सामान्य मिलन से लेकर संघर्ष तक फलीभूत होती है। कहना होगा कि नाटक के प्रथम दो दृश्यों तक तो सब कुछ सामान्य चल रहा था। नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी को अभी तक देवरूप आदि उपाधियों से विभूषित किया जा रहा था, के द्वारा में जमन वर्मा की गर्भवती पत्नी वीमा का षड्यंत्र के तहत अपहरण करवा दिया जाता है। यहीं पर उनकी जातीय अभिमान से बजबजाती कुटिलता परिलक्षित होती है। यहीं पर नाटक का बीज रूप में निरुपण होता है। जब नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी जमन वर्मा से कहते हैं कि ''निःशक्तों के सामूहिक विवाह के लिए हमने आवेदन आंमत्रित किये हैं। तुम अपनी अर्जी लगा दो। हां जाति के कॉलम में अपनी जाति जरूर लिख देना, साफ–साफ।''

बारह दृश्य, नौ चरित्र और अस्सी पृष्ठों में सृजित 'वीमा' नाटक पृष्ठ दर पृष्ठ पाठक में जिज्ञासा उत्पन्न कर उसे अगला पृष्ठ बदलने को आतुर कर देता है।

पाठक नए चरित्रों से रूबरू हुआ स्वयं को नाटक के नायक जमन वर्मा से संलग्न कर अभिभूत हो जाता है। यहाँ जमन वर्मा का संघर्ष न केवल उसका अपना संघर्ष है, बल्कि निःशक्तों का एक वर्गगत संघर्ष है और प्रतीक वीमा है। वीमा के अपहरण के बाद ही यह संघर्षरत होने की ओर अग्रसर होता है।

नेत्रहीन गर्भवती पत्नी वीमा के अपहरण से आहत जमन वर्मा अनेक प्रलोभनों को ठुकराकर सहधर्मिणी की प्राप्ति की आशा में शक्तिशाली लोगों से लोहा लेता है। प्रथमः नेत्रहीन संस्था के संस्थापक श्यामाजी से उसके संघर्ष का सूत्रपात होता है। परिणामस्वरूप जमन को नौकरी से बर्खास्त होना पड़ता है तथा आशियाने से महरूम होना पड़ता है। उम्मीद की डोर लिए जमन वर्मा निशक्तों के धनी धोरा आका के चेम्बर में जाकर गुहार करता है। जब आका भी श्यामाजी की तरह जात की जाजम पर बैठे प्रतीत होते हैं तो वह अपनी छड़ी ठकठकाकर लौट आता है। वह अपने निःशक्त मित्र देवतसिंह की मदद से एफ आई आर दर्ज़ कराने हेतु थाने में जाता है और थानाधिकारी को लिखित में शिकायत करता है। परन्तु वहां भी निराशा हाथ लगती है। एस.एच.ओ. द्वारा श्यामाजी के विरुद्ध कार्रवाई करना तो दूर उसका प्रार्थना पत्र भी रिमार्क नहीं करता है। लोकतंत्र के चौथे मजबूत स्तंभ मीडिया से कुछ आशा बंधती है। वह अपने मित्र देवतसिंह की सलाह पर दैनिक समाचार पत्र के संवाददाता सीसी झा को आपबीती सुनाकर न्याय की अपेक्षा करता है। परन्तु सब के सब जात की उसी जाजम पर बैठे होते है। संवाददाता झा के द्वारा श्यामाजी के पक्ष में ख़बर लिखकर जमन वर्मा को ही दोषी ठहरा दिया जाता है।

नाटककार ने नाटक में यथार्थ परिस्थितियों का जीवन्त चित्रण किया है लेकिन फोटोग्राफी से बचे है। जाति के मचान पर विराजे संस्थापक, आका, थानाधिकारी, संवाददाता आदि सब एक ही विचारधारा के हैं। जाति की जड़ें भारतीय समाज में बहुत गहरी पैठी हैं। जिसकी श्रृंखला तोड़ने का कोई मजबूत हथौड़ा नहीं है। अंत में जब सब कुछ खत्म होने के कगार पर होता है तब नाटककार सांभरिया एक राह निकालते हैं और वह है निःशक्तों का एकजुट 'आन्दोलन'। एक, दो, तीन, चार और करते–करते निशक्तों का एक बड़ा समूह इस आन्दोलन में भागीदारी निभाता हैं। अभी तक जो मीडिया निःशक्तों की खबर से बच रहा था, इस आन्दोलन में सहभागी हो जाता है। परिणामस्वरूप नेत्रहीन जमन वर्मा को हृदय की आंखों से देखने वाली समदर्शी पत्नी वीमा प्राप्त होती है।

नाटक के पात्र, कथावस्तु आदि के उपरान्त इसकी भाषा शैली पर चर्चा करें तो यहाँ पर वह आरोप निराधार हो जाते है कि दलित साहित्य के प्रतिमान नहीं होते। उनको वीमा नाटक को एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। वीमा नाटक का तात्विक दृष्टि से विवेचन किया जाए तो यह नाटक अन्य समकालीन नाटकों के मध्य अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराता है। इनका रचनाकर्म किसी भी प्रकार से कमज़ोर नहीं हैं। परिपक्वता, सृजनशीलता, लेखन, भावबोध, भाषा शैली और सौन्दर्यशास्त्र के मद्देनज़र किसी से बीस नहीं तो उन्नीस

भी नहीं पड़ता है। अस्मिता, संघर्ष, चेतना आदि की दृष्टि से यह नाटक वास्तव में समकाल संवेदनाओं का महानाटक है।

आज दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और निःशक्त विमर्श साहित्य के केन्द्र में है। वीमा नाटक की यह खूबी है कि इसमें यह तीनों ही विमर्श समावेशित है। विकलांग विमर्श के तहत उन समस्त दिव्यांग जन को साहस और संघर्ष की मजबूत डोर थमाता है। वास्तव में नेत्रहीनता का दोष संगठनात्मक शक्ति के समक्ष निस्तेज हो जाता है। स्त्री विमर्श की बात करें तो वीमा का फ्लैशबेक में ही परिवार से अपने अधिकारों के निमित टकराहट, फिर गुंडे से दो–दो हाथ तथा जात–पांत की विषमता से परे होकर जमन वर्मा से कोर्ट मेरिज करना क्रान्तिकारी कदम का द्योतक है। नायिका वीमा यहाँ केवल एक चरित्र नहीं है, वरन् एक प्रतीकात्मक चरित्र बनकर उभरी है तथा स्त्री विमर्श के लिए आदर्श बन जाती हैं। दलित विमर्श की धरातल पर लिखा यह नाटक जाति–पाँति की जाजम के एक–एक रेशे को उघाड़ता हैं। नाटक कद्दावर लोगों की हैसियत और हैवानियत की ठीक से खबर लेता हैं। नाटक वास्तव में पोषकों के जन विरोधी क्रिया कलापों की चूलें हिला देता है। कहें कि नाटककार ने नाटक के बहाने सदियों की पीड़ा को उजागर कर जाति के तथाकथित ठेकेदारों को झकझोरा है। यथार्थ के धरातल का अहसास कराते हुए काल्पनिक पात्रों से सुसज्जित वीमा नाट्य कृति निःशक्त जन आका, श्यामाजी जैसे सरकारी संस्थापक, एस.एच.ओ थानाधिकारी तथा झा जैसे मीड़िया कर्मी की न्यूनताओं का प्रामाणिक दस्तावेज है।

अब बात करते हैं नाटक के सफलता के सोपान क्या होना चाहिए–उत्तर स्पष्ट है– रंगमंच, रंगकर्मी और प्रेक्षागृह। इस नजरिये से यह नाटक सफलता के कई सोपान रच रहा है। नाटक के भीतर भारतीय समाज स्थापित है। जिसमें एक अच्छे भारत बनाने की चाह विद्यमान है। समरस समाज की संकल्पना सर्वत्र व्याप्त है। मंचन की दृष्टि से भी यह नाटक खरा उतरता है। इसमें पात्र कम हैं, संवाद चुटीले और संक्षिप्त हैं तथा कथानक का विकास प्रभावोत्पादकता से परिपूर्ण है। दृश्यों की संख्या सीमित है। कथावस्तु नवीनता लिए हुए है। निशक्तों को असहाय, निरीह, निराश्रित न दिखाकर स्वाभिमानी, संघर्षशील और एकता के सूत्र में बंधा हुआ दिखाया है। भाषा शैली संयमित और मर्यादित है। अतः रंगमंच के लिए यह नाटक पूर्णतया उपयुक्त है। नाटक के बार–बार मंचन के उपरान्त नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा जाएगा तथा एक दीर्घकाय आधुनिक सुविधाओं से युक्त तीसरी दुनिया के रंगमंच की आवश्यकताओं को अमलीजामा पहनाया जाएगा। यथा नाट्य विधा नये युग में प्रवेश कर रही है और इसमें वीमा नाट्य कृति का बड़ा योगदान माना जाना चाहिये ।

डॉ. अनिल कुमार बारिया
असि. प्रोफेसर
राजकीय डूंगर महाविद्यालय
बीकानेर, –334001 राजस्थान
मोबा. 9460101179

समीक्ष्य नाट्य कृति – वीमा
नाटककार – रत्नकुमार सांभरिया
प्रकाशन – नटराज प्रकाशन नई दिल्ली
पृष्ठ – 80
मूल्य – 80 रुपये

दलित अवधारणाओं का नया दौर

– डॉ. इकरार अहमद

स्वतन्त्रता के पश्चात् दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये भारतीय संविधान द्वारा आरक्षण का प्रावधान किया गया। सभी सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अभ्यर्थियों के लिये उनकी आबादी के अनुरूप आरक्षण की व्यवस्था होने के उपरान्त भी ब्राह्मणवादी मानसिकता के राजनीतिज्ञों एवं उच्चाधिकारियों द्वारा इसे पूर्ण नहीं होने दिया गया। 1 जनवरी 1978 तक केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में दलितों की स्थिति को निम्न आँकड़ों से समझा जा सकता है–

''केन्द्रीय सरकार की सेवाएं : 1 जनवरी 1978 को

श्रेणी	कुल संख्या	अनुसूचित जातियाँ	प्रतिशत	अनुसूचित जनजातियाँ	प्रतिशत
श्रेणी 1	31,635	1,430	4.49	265	0.85
श्रेणी 2	39,792	2,519	6.33	296	0.74
श्रेणी 3	10,79,018	1,23,686	11.46	21,712	2.01
श्रेणी 4	11,19,450	2,11,561	19.07	51,293	4.62

आजादी के बाद की दलित राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। संविधान के अनुच्छेद 330 के अन्तर्गत लोकसभा और अनुच्छेद 332 में राज्य विधान सभाओं के लिए दलितों की जनसंख्या के अनुसार स्थान आरक्षित किये गये। दलितों के लिए आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में दलित उम्मीदवारों की विजय सवर्ण मतों पर निर्भर करती थी। इसलिए सुनिश्चित जीत के लिये दलितों का काँग्रेस से जुड़ना आवश्यक हो गया। काँग्रेस द्वारा पोषित दलित राजनीति ने उन दलितों को अपना प्रत्याशी बनाया जो अम्बेडकर विरोधी और गाँधी समर्थक होते थे। काँग्रेस ने बाबू जगजीवन राम को डॉ. अम्बेडकर के विरोध में समानान्तर राजनीति में उतारा था। प्रारम्भिक राजनीति में वह अम्बेडकर विरोधी भी थे और गाँधी समर्थक भी। उन्होंने दलितों को काँग्रेस से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वे काँग्रेस में दलित राजनैतिक मामलों के प्रभारी माने जाते थे।

1960 के दशक में डॉ. अम्बेडकर द्वारा स्थापित 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' ने महाराष्ट्र, दिल्ली और उत्तर भारत में 'भूमि सत्याग्रह' आरम्भ करके सफलता प्राप्त की। 1962 के आम चुनावों में उत्तर प्रदेश से विधानसभा में ग्यारह तथा लोकसभा में चार रिपब्लिकन पार्टी के सदस्य चुने गये। परन्तु यह सफलता क्षणिक थी और पुनः यह पार्टी सिमटकर काँग्रेस की सहयोगी बन गयी। सन् 1969 में इन्दिरा गाँधी के विरोध में इंडिकेट और सिंडीकेट के रूप में काँग्रेस का विभाजन हुआ। इन्दिरा गाँधी ने अपनी कांग्रेस का अध्यक्ष जगजीवन राम को बनाया।

सत्तर के दशक को महत्त्वपूर्ण राजनैतिक आन्दोलनों के लिये जाना जाता है। सन् 1972 में इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में पुनः सरकार बनी। इसी समय बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया और इस दशक की महत्त्वपूर्ण घटना है इन्दिरा गाँधी द्वारा आपातकाल की घोषणा। वहीं दूसरी ओर बाबू जगजीवनराम का काँग्रेस से मोहभंग हुआ। बी.पी. मौर्या काँग्रेस के अन्दर एक अन्य दलित नेता के रूप में उभरे और दलित वोटों के लिये काँग्रेस की जगजीवन राम पर निर्भरता समाप्त

हुई। इन्हीं परिस्थितियों में अपनी उपेक्षा से त्रस्त जगजीवन राम सरकार और काँग्रेस को छोड़कर बाहर आ गये।

आपात्काल के दौरान समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में इन्दिरा गाँधी के विरुद्ध आन्दोलन चला, जिसे सम्पूर्ण क्रान्ति का नाम दिया गया। 1977में सम्पूर्ण विपक्ष ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया और बाबू जगजीवन राम को प्रधानमंत्री के रूप में प्रस्तुत कर चुनाव लड़ा परन्तु जनता पार्टी की जीत के बाद मोरारजी देसाई को प्रधानमन्त्री बनाया गया। यहाँ भी दलितों के साथ छल किया गया। दलित वोटों ने जनता पार्टी को प्रचण्ड बहुमत से जिताया परन्तु सम्पूर्ण क्रान्ति का दावा करने वाले एक दलित को प्रधानमन्त्री के रूप में न देख सके। निष्कर्षतः सम्पूर्ण क्रान्ति का जे.पी. आन्दोलन भी दलित क्रान्ति का वाहक न बन सका। इस समय तक आते–आते दलित सभी राजनैतिक दलों व सामाजिक संगठनों से हताश व निराश हो चुका था, जिसका विस्फोट हमें आगे के दलितों द्वारा आरम्भ किये गये दलित आन्दोलनों में दिखायी देता है। दलितों का नया दौर लगभग इसी समय से माना जा सकता है।

अस्सी के दशक से दलितों की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति में एक विशेष परिवर्तन आया है। इसी समय को नये दौर की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इस नये दौर में पुराने मानदण्डों एवं ब्राह्मणवादी परम्पराओं को नकारते हुए दलित अवधारणाओं को नये सिरे से पुनर्परिभाषित किया गया है।

आजादी के पश्चात् हरिजनों को अनुसूचित जाति एवं जनजाति के रूप में संवैधानिक मान्यता दी गयी है। परन्तु नये दौर में इस समुदाय के लिए दलित शब्द का प्रयोग अधिक चर्चित हुआ है। भारतीय सामाजिक सन्दर्भों में लगभग आठ दशकों पूर्व 'दलित' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था। दलित शब्द का प्रारम्भिक प्रयोग करने वालों में स्वामी विवेकानन्द, महात्मा फुले एवं रानाडे का नाम लिया जा सकता है। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने इस वर्ग के लिये 'डिप्रेस्ड कास्ट' शब्द का प्रयोग किया। डॉ. अम्बेडकर ने भी 'दलित' शब्द को अधिक उपयुक्त माना है क्योंकि दलित एक सटीक शब्द है जो संघर्ष की प्रेरणा देता है।

दलित शब्द का अर्थ जाति और वर्ग से जुड़कर विकसित हुआ है। यह अंग्रेजी के शब्द 'डिप्रेस्ड क्लासेज' एवं 'डाउनट्राडन' के हिन्दी रूपान्तरण के अर्थ में प्रयोग हो रहा है। सैद्धान्तिक रूप से यह शब्द समस्त अस्पृश्य जातियों, आदिवासियों, भूमिहीन खेत मजदूरों, मजदूर वर्ग तथा पिछड़ी जातियों के लिए प्रयुक्त होता है। परन्तु व्यावहारिक रूप में दलित शब्द सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक शोषण के शिकार अनुसूचित जाति व जनजाति वर्ग के लिये प्रयुक्त होता है। दलित वर्ग को परिभाषित करते हुए डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर अपने लेख 'हिन्दी में दलित साहित्य' में कहते हैं–''मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है, जिसे निजी स्वार्थों के लिये मानव निर्मित झूठी, बर्बर मान्यताओं को मनुस्मृति और धर्म के नाम पर स्वीकारने के लिये बाध्य किया गया हो, वह दलित वर्ग है। उपेक्षित अपमानित प्रताड़ित, बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी 'दलित' की श्रेणी में आते हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित–निराश्रित भी 'दलित' ही हैं।''[2]

दलित वर्ग की पहचान करते हुए दलित लेखक डॉ. महीप सिंह अपने लेख 'चर्चा के केन्द्र में है दलित साहित्य' में कहते हैं –''शताब्दियों से इस देश की समाज–व्यवस्था इसी व्यवस्था के एक बहुत बड़े वर्ग को शूद्र श्रेणी में रखती रही है। शूद्रो में एक वर्ग को अछूत घोषित कर दिया गया, जिनकी छाया से भी भ्रष्ट हो जाने की आशंका से ग्रस्त होकर अपने आपको सवर्ण मानने वाले लोग, कतराने लगे। इनके हाथ से पानी पीना तो धर्म भ्रष्ट हो जाना नियति बन गया। पिछले कुछ वर्षों में इस वर्ग के लोगों ने अपने लिये अछूत, अस्पृश्य, हरिजन आदि शब्दों का त्याग करके अपने आपको दलित कहलाना पसंद किया।[3]

वहीं दूसरी ओर मराठी लेखक नामदेव ढ़साल दलित वर्ग की पहचान में व्यापकता लाते हुए स्पष्ट करते हैं– ''अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, भूमिहीन,

कृषक व भटकने वाली सभी जातियाँ, दलित हैं।''[4]

मध्य प्रदेश शासन द्वारा तैयार किये गये 'भोपाल दस्तावेज के अध्याय–1 ''कलंक के मूल की पहचान' में दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कहा गया है –''दलित शब्द से आशय उन समुदायों से है जो अछूत और आदिवासी हैं जिन्हें क्रमशः शासकीय रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति कहा गया है।[5]

निष्कर्षतः जब हम दलित समुदाय की पहचान करते हैं तो मुख्यतः दो प्रकार की विचारधाराओं का सामना होता है। एक विचार–धारा दलित वर्ग की व्याख्या व्यापक रूप से करते हुए सभी आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समुदायों को दलित वर्ग में सम्मिलित करती है। वहीं दूसरी ओर विद्वानों का एक वर्ग सामाजिक रूप से पिछड़े समुदाय को दलित वर्ग की पहचान देता है। अतःदलित समुदाय की पहचान वर्ण या वर्ग के आधार पर की जाती है।

भारतीय समाज में दलित वर्ण है या वर्ग। दलित की पहचान का आधार सामाजिक हो या आर्थिक। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। परन्तु भारतीय समाज में यदि कोई सत्य है तो वह है जाति क्योंकि धर्म–परिवर्तन के उपरान्त भी जाति ने दलितों का पीछा नहीं छोड़ा। संसार का कितना ही अच्छा दर्शन हो भारतीय समाज में प्रवेश करते ही जाति से आतंकित हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से कमजोर तो दलित हैं ही परन्तु उनकी मूल समस्या सामाजिक है जो वर्ण–व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए 'दलित' शब्द को संकुचित व व्यापक दो अर्थों में विभाजित करके दलित लेखिका 'रजत रानी मीनू' का मत है– ''संकुचित अर्थः चतुर्थ वर्ण (शूद्र) में आने वाली जातियाँ, उपजातियाँ जैसे भंगी, चमार, मांग, महार, डोम, अन्त्यज, चाण्डाल आदि बहिष्कृत अछूत जातियाँ संकुचित अर्थ में आती हैं। इन जातियों को तथाकथित उच्च जातियाँ नीचा मानती हैं तथा ये दलित जातियाँ स्वयं भी दूसरे से अपने आप को नीचा व कम दर्जे का ही समझती हैं।

व्यापक अर्थ : 'दलित शब्द एक वर्गीय शब्द है जो न केवल अछूतों को ही अपने भीतर लेता है, बल्कि अभावग्रस्त ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय आदि सभी वर्गों व जातियों को जिनकी आर्थिक दशा खराब हो और जो विभिन्न प्रकार के अभावों में जीवन जीते हैं। जैसे, खेत–मजदूर, बंधुआ मजदूर, भूमिहीन, गरीब, बेरोजगार, महिलाएं और अनाथ बच्चे, ये सब चाहें किसी भी जाति या धर्म से सम्बद्ध हों वर्गीय दृष्टि से दलित ही होते हैं।

जैसे–जैसे जातियाँ टूटती हैं और वर्ग का उदय होता है। वैसे–वैसे दलित शब्द व्यापक होता जाता है। किन्तु भारतीय समाज का यथार्थ संकुचित शब्द सच है, जबकि व्यापक अर्थ काल्पनिक आदर्श अधिक है वास्तविक यथार्थ कम।'[6]

जाति और कर्मकाण्डों के आधार पर भारतीय सामाजिक व्यवस्था टिकी हुई है। इस तथ्य को प्रख्यात समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास बीडलमैन को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं –''बीडलमैन ने जिस असंगति पर जोर दिया है और जिसे लोग स्वयं भी जानते हैं, वह जातियों के पद–निर्धारण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसमें कभी–कभी कर्मकाण्डीय और लौकिक पद के बीच विच्छेद दिखायी पड़ता है। केवल लौकिक कसौटी पर किसी ब्राह्मण का स्थान भले ही नीचा हो, पर वह फिर भी ब्राह्मण है, और इस कारण कर्मकाण्ड और पवित्रता सम्बन्धी सन्दर्भों में सम्मान का अधिकारी है।''[7]

इन परिस्थितियों को समझने के लिए भारतीय समाज में कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। वर्ण–व्यवस्था के एक शर्मनाक उदाहरण को प्रस्तुत करते हुए गोपाल गुरु अपने लेख 'दलित बौद्धिकता और सांस्कृतिक दीवारें' में कहते हैं– ''उत्तर प्रदेश में तैनात न्यायिक अधिकारी भगीरथ प्रसाद को कुछ समय पहले ही उनके वरिष्ठ उच्च वर्गीय अधिकारियों ने कार्यकुशलता का 'प्रमाण पत्र' दिया था। फिर इस अधिकारी का इलाहाबाद तबादला हो गया। उनके स्थान पर आये एक उच्चवर्णीय अफसर ने उस कमरे

और वहाँ की मेज–कुर्सी को गंगा के पानी से धुलवाया। यह विवाद जब आगे बढ़ा और अधिक गम्भीर होने लगा तब इस अधिकारी ने अपना जातिवाद छुपाने के लिये धूर्तता का सहारा लिया। उसने कहा कि 'मुझे दमे की शिकायत है, इसीलिए मैंने कमरा धुलवा डाला।''[8]

चाहे न्यायिक अधिकारी हों या जेल के कैदी, प्रत्येक स्थान पर वर्ण–व्यवस्था अपने खूनी शिकंजे को फैलाये हुए है। छुआछूत का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय कहते हैं –''भोजपुर के जिलाधिकारी संजय कुमार के अनुसार आरा डिवीजन जेल में कैद 96 कैदियों ने अपने लिए अलग रसोई घर की माँग की। रणवीर सेना से जुड़े इन 96 सवर्ण कैदियों ने दलित व पिछडे कैदियों के साथ बने रसोई घर में भोजन करने से इनकार कर दिया।''[9]

आज दलित शब्द को इसी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। दलित होने की परिस्थितियों को उजागर करते हुए राजकिशोर का मत है –''वस्तुतः कोई दलित होता नहीं, दलित पैदा होता है। यह बन्धन जन्म से मृत्यु तक का है। अगर किसी का जन्म दलित परिवार में हो गया है, तो वह आजीवन दलित ही रहेगा।

दलित शब्द उन जातियों के अर्थ में रूढ़ होता जा रहा है जिन्हें पहले अछूत या हरिजन कहा जाता था। इसके लिये कानूनी शब्द 'अनुसूचित जाति' है। जब मैं यह कहता हूँ कि 'अगर मैं दलित होता' तो मेरा अभिप्राय 'अनुसूचित जाति' का होने से ही है। इन जातियों के लोग भारतीय समाज में तिरस्कार के पात्र माने जाते हैं। इन्हें बहुत नीच माना जाता है। यह पात्रता उन्होंने स्वयं अर्जित नहीं की है। यह उन्हें जन्म से मिली है।''[10]

वास्तव में वर्ग एक धारणा है और वर्ण या जाति एक वास्तविकता है। वर्ग की धारणा का अधिकार आर्थिक होता है जबकि वर्ण या जाति का सम्बन्ध आर्थिक के साथ–साथ सामाजिक भी होता है। इसके अतिरिक्त वर्ण या जाति का निर्धारण जन्म से होता है। इन परिस्थितियों में आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पीड़ित वर्ग अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति को ही दलित माना जाना चाहिए।

''दलित'' शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाने के पश्चात् दलित मुक्ति का प्रश्न विचारणीय है। मुक्ति को मुख्यतः दो अर्थों में समझा जाता है। पहला आध्यात्मिक और दूसरा भौतिक। पहली मुक्ति का अर्थ है– मृत्यु के बन्धनों से मुक्ति अर्थात मोक्ष की प्राप्ति और दूसरी मुक्ति का अर्थ है– मनुष्य का मनुष्य की दासता से मुक्ति। भारतीय दलित अवधारणा के सम्बन्ध में 'मुक्ति' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'लिबरेशन' शब्द के अर्थ के रूप में किया गया है। इसका सीधा सम्बन्ध ऐसी समाज–व्यवस्था के निर्माण से है जहाँ समाज में समता एवं समानता का वातावरण हो। 1845–46 के दौरान ब्रूसेल्स में लिखे गये कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंजिल्स ने अपने लेख 'द जर्मन आइडियोलाजी' में मानव की वास्तविक मुक्ति की दशा का आशय इस प्रकार स्पष्ट किया है – ''हम अपने योग्य दार्शनिकों को यह नहीं बताना चाहेंगे कि दर्शन, अध्यात्म तत्त्व आदि की व्याख्या को 'आत्मचेतना' की व्याख्या तक सीमित करने अथवा मानव को इन मुहावरों से मुक्त करने आदि से 'मानव' की 'मुक्ति' का कार्य एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा है। सच तो यह है कि मानव की दासता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। न ही हम उन्हें यह बताना चाहेंगे कि मानव की वास्तविक मुक्ति तभी सम्भव है जब समाज में कुछ वास्तविक साधनों का उपयोग, जैसे–भाप के इंजन, चरखा आदि के प्रयोग से दासता का या कृषि सुधार के माध्यम से कृषि दासता का उन्मूलन किया जाए। या सामान्य रूप से यह कहा जाए कि लोगों की मुक्ति तभी सम्भव है जब उन्हें पर्याप्त मात्रा और गुणवत्ता में रोटी, कपड़ा और मकान मिले।''[11]

पाश्चात्य चिन्तकों के दर्शन में हमें आर्थिक मुक्ति का प्रश्न प्रबल दिखायी देता है परन्तु भारतीय परिस्थितियों में सामाजिक मुक्ति व धर्म द्वारा पोषित वर्ण–व्यवस्था से मुक्ति की अधिक आवश्यकता है। भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर के

मुक्ति सम्बन्धी अवधारणा का विश्लेषण करते हुए डॉ. दिनेश राम ने अपना मत व्यक्त किया है– ''डॉ. अम्बेडकर का जो दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख है– 'जाति का उन्मूलन'। मुक्ति के सन्दर्भ में भारतीय समाज व्यवस्था के लिये यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण प्रलेख है। चूंकि भारतीय समाज जाति व्यवस्था पर आधारित है और जाति व्यवस्था का मूल आधार भेदभाव है जिसके द्वारा व्यक्तियों का शोषण होता है। इसलिए जाति व्यवस्था से मुक्ति के लिये यह प्रलेख महत्त्वपूर्ण आधारों को प्रस्तुत करता है। यहाँ ध्यातव्य है कि न तो मार्क्स का न ही माओत्सेतुंग का समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था। इसलिए जाति व्यवस्था से मुक्ति का चिन्तन भी उन्होंने नहीं किया। पर डॉ. अम्बेडकर का समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था। इसलिए उन्होंने जाति व्यवस्था से मुक्ति का चिन्तन भी किया। यहाँ मार्क्स और माओत्से तुंग के चिन्तन से अम्बेडकर का यह अतिरिक्त चिन्तन है। इसलिए भारतीय परिस्थितियों में डॉ. अम्बेडकर का मुक्ति–चिन्तन समग्रता का चिन्तन ठहरता है।''[12]

धर्म–भीरु भारतीय समाज में मुक्ति का सम्बन्ध मुख्यतः मोक्ष, कैवल्य या निर्वाण से माना गया है। साम्यवाद के आगमन ने मनुष्य की दासता से मुक्ति का सिद्धान्त स्थापित किया परन्तु वह आधार केवल आर्थिक था। साम्यवाद का जन्म यूरोप में हुआ जहाँ पूँजीवाद अपने चरम पर है लेकिन भारतीय समाज में धर्म की रूढ़िवादिता, पूंजीवाद, सामन्तवाद एवं वर्ण–व्यवस्था एक साथ प्रचलित हैं और जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके गुणों से नहीं, जाति से होती है। अतः दलित मुक्ति की अवधारणा आर्थिक दृष्टि के साथ–साथ सामाजिक मुक्ति की भी आवश्यकता है।

दलित वर्ग की पहचान सामाजिक दृष्टि से करने के उपरान्त यह शब्द संवैधानिक स्थिति में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के रूप में जाना जाता है। 1981 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों की संख्या 104, 754, 623 थी जो भारत की आबादी का 15.75 प्रतिशत है। इसमें से 84 प्रतिशत लोग देहात में और 16 प्रतिशत लोग शहर के निवासी हैं। वर्ष 1991 की भारत की जनगणना के अनुसार 84.63 करोड़ लोगों में से 20.59 करोड़ लोग अनुसूचित जाति/जनजाति के हैं जिनमें से 13.82 करोड़ अनुसूचित जाति और 6.77 करोड़ आदिवासी हैं। ये दोनों वर्ग कुल जनसंख्या का 24.32 प्रतिशत हैं। पूरे देश की जनसंख्या में प्रतिशत के हिसाब से अनुसूचित जातियों की सबसे अधिक जनसंख्या पंजाब में 26.87 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश 24.62 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल 21.99 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 21.16 प्रतिशत, हरियाणा 19.07 प्रतिशत, तमिलनाडु 18.35 प्रतिशत, राजस्थान 17.03 प्रतिशत और त्रिपुरा में 15.12 प्रतिशत है। अन्य राज्यों में जनसंख्या का प्रतिशत 15 से कम है।

सदियों से इतने बड़े वर्ग का शोषण वर्ण–व्यवस्था द्वारा होता रहा। इस वर्ग का शोषण वैश्यों द्वारा धन से एवं क्षत्रियों द्वारा धन और तन अर्थात आर्थिक व शारीरिक शोषण किया गया। वहीं ब्राह्मणों ने धर्म का हौवा दिखाकर तन और धन के साथ मन से इस वर्ग का शोषण कर इसे लूटते रहे। परन्तु आज आधुनिकता के परिणामस्वरूप दलितों में चेतना जागृत हुई है। फुले–पेरियार–नारायण गुरु, अम्बेडकर ने आत्म सम्मान और सामाजिक अस्मिता की भावभूमि तैयार की थी, उस संघर्ष को आकार देना आरम्भ हो चुका है। सदियों से उपेक्षित, पीड़ित, शोषित एवं वंचित आज प्रखर आत्मबोध के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। बाबा साहब ने अपनी लेखनी, वाणी, समाचार–पत्रों एवं आन्दोलनों से दलितों में चेतना जागृत की। दलितों में जागृति लाने के लिये उन्होंने 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' का नारा दिया। दलितों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ और संवैधानिक अधिकारों व आरक्षण का लाभ उठाकर अपनी आर्थिक व शैक्षिक स्थिति में उन्नति प्राप्त की। दलित चेतना का मन्तव्य स्पष्ट करते हुए दलित कवि व चिन्तक ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है – ''दलित की व्यथा, दुख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु–विगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहीन हो। चेतना का सीधा

सम्बन्ध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना।''[13]

सन् 1990 के आसपास भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय का नारा अधिक प्रचलन में रहा है। मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिए इसी सिद्धान्त की पृष्ठभूमि निर्मित की गयी थी। मण्डल आयोग में आर्थिक पक्ष को ध्यान में अवश्य रखा गया परन्तु इसके मूल में सामाजिक अवधारणा ही अधिक थी। इस आयोग की सिफारिशों को भूतपूर्व प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा लागू करने के बाद पिछड़े वर्ग अर्थात सछूत शूद्रों को भी आरक्षण का लाभ मिला। इस आरक्षण का देश व्यापी विरोध ब्राह्मणवादियों द्वारा किया गया। दलितों ने आरक्षण के समर्थन में आकर पिछड़ा एवं दलित वर्ग की एकता स्थापित करने का प्रयास किया। सवर्णों के आक्रोश का निशाना दलित बना क्योंकि पिछड़े वर्ग की जातियाँ शारीरिक, राजनैतिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त थीं। दलित उत्पीड़न की घटनाएं इस दौर में अधिक बढ़ीं। नारायणपुर, बेलची, देवली, मेहसाणा के जनसंहार इसके उदाहरण हैं। परन्तु फिर भी दलित सामाजिक—न्याय की भावना से ओत—प्रोत हैं और सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के आधार पर समाज का निर्माण करने के लिये प्रतिबद्ध हैं।

भारतीय समाज संरचना मूलतः सामन्तवादी व्यवस्था पर आधारित है। हमारे देश में प्रजातान्त्रिक राजनीति का आरम्भ राष्ट्रीय आन्दोलन से माना जाता है। पाश्चात्य शिक्षा एवं अंग्रेजों के प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय समाज का परिचय लोकतन्त्र से हुआ। इसी लोकतन्त्र आधारित व्यवस्था में दलितों को राजनैतिक अधिकार मिल सकते थे, क्योंकि सामन्तवादी व्यवस्था में वह शूद्र के रूप में उच्च वर्णों की सेवा करने को अभिशप्त थे। महात्मा फुले, श्री नारायण गुरु, पेरियार रामास्वामी नायकर, छत्रपति शाहू जी महाराज, स्वामी अछूतानन्द, गोविन्द रानाडे अपने दलित आन्दोलनों के माध्यम से दलित राजनीति की नींव डाल चुके थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन एवं उसके पश्चात् के स्वातन्त्र्योत्तर युग की दलित राजनीति के मुख्यतःचार सोपान थे —पहला—मार्क्सवाद, दूसरा—गाँधीवाद, तीसरा—लोहियावाद एवं चौथा—अम्बेडकरवाद। इन विचारधाराओं ने समय—समय पर दलितों को अपने आन्दोलनों से जोड़ने का प्रयास किया। मार्क्सवाद ने वर्ग—संघर्ष के माध्यम से दलितों को सर्वहारा में सम्मिलित कर क्रान्ति की रूपरेखा बनायी परन्तु उनके दर्शन में वर्ण सिरे से गायब था। मार्क्सवाद का शोषक और शोषित का सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में अखण्ड सत्य है परन्तु धर्म द्वारा पोषित वर्ण—व्यवस्था वाले देश में केवल वर्ग से काम नहीं चल सकता है। दलितों की समस्या आर्थिक अवश्य है लेकिन उसके मूल में सामाजिक व्यवस्था है। मार्क्सवादियों ने दलित प्रश्न को आर्थिक दृष्टि से सुलझाने का प्रयास किया इसीलिए वामपंथ कोई बड़ी क्रान्ति भारत में नहीं कर सका। भारत में वामपंथ को कोई सफलता न मिल पाने का कारण दलित चिन्तक कँवल भारती ने डॉ. अम्बेडकर के मत का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है ''अम्बेडकर के अनुसार वामपंथियों में दो दोष थे। पहला यह कि उनका नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथों में था और इसलिए कथनी और करनी में अन्तर था। वे कभी वर्णच्युत नहीं हो सके। उन्होंने जातिप्रथा के बजाय गरीबी का सवाल उठाना इसलिए पसन्द किया, क्योंकि यह हिन्दू समाज की मूल संरचना के लिये घातक नहीं था। दूसरा यह कि मजदूर नेताओं ने उद्योगपतियों की आलोचना भर सीखा था। उन्होंने भारतीय समाज का गहरा अध्ययन नहीं किया था।''[14]

पूना समझौते से गाँधी और दलितों के बीच विचारधारा का टकराव आरम्भ हो चुका था। परन्तु फिर भी आजादी के पश्चात् दलित जगजीवन राम के नेतृत्व में गाँधीवाद से जुड़ने को बाध्य हुआ क्योंकि दलितों के लिये आरक्षित लोकसभा एवं विधानसभा की सीटों को सवर्णों की सहायता से ही जीता जा सकता था। नये दौर में गाँधीवाद के हरिजन आन्दोलन से दलितों का

मोहभंग हुआ और गाँधी द्वारा दलितों को दिये गये नाम 'हरिजन' का कड़ा प्रतिवाद किया गया। गाँधीवाद से मोहभंग होना दलितों की स्वाभाविक प्रक्रिया थी क्योंकि दलित कई वर्षों से गाँधीजी के हृदय परिवर्तन, ट्रस्टीशिप व पंचायती राज आदि से ऊब गया था। इन सिद्धान्तों से दलितों का कुछ भी भला नहीं हुआ। गाँधीवाद से दलितों के मोहभंग का कारण स्पष्ट करते हुए लेखक उदय प्रकाश एक साक्षात्कार में कहते हैं – ''यह कभी न भूलें कि गाँधीवाद के समाज का आदर्श मॉडल भविष्य में नहीं अतीत में था। वह प्लेटो का 'रिपब्लिक' या मार्क्स का वर्गहीन समाज नहीं बल्कि मिथकों का रामराज्य था। हम सब जानते हैं कि रामराज्य में वर्ण–विभाजित समाज के उन्मूलन और विसर्जन की कोई परिकल्पना नहीं थी। वहाँ शम्बूक शूद्र तप नहीं कर सकता था, वेद निचली जातियों को नहीं सुनाये जा सकते थे। उच्च शिक्षा पर निश्चित वर्णों और वर्गों का ही अधिकार था और स्त्री को अग्निपरीक्षा से गुजरना पड़ सकता था। इसलिए रामराज्य का मॉडल दलित–स्वप्न नहीं हो सकता।''[15]

भारतीय समाज के दलित व पिछड़े वर्ग के अधिकारों की लड़ाई को डॉ. राममनोहर लोहिया ने मजबूती से लड़ा है। 1955 और 1956 ई0 के दौरान डॉ. लोहिया और डॉ. अम्बेडकर के बीच पत्र–व्यवहार का उल्लेख मिलता है। दुर्भाग्यवश इसी समय डॉ. अम्बेडकर का निधन हो गया और लोहिया ने शोषित एवं पीड़ितों की लड़ाई को अकेले ही लड़ने का निश्चय कर लिया। लोहिया पहले गैर–दलित थे जिन्होंने वर्ण को प्रमुखता दी।लोहिया को भारत की जाति–प्रथा और वर्ण–व्यवस्था से कोई हमदर्दी नहीं थी इसलिए वह सामाजिक संरचना को समझने एवं समानता का दर्शन स्थापित करने में सफल हुए। लोहिया के जाति–प्रथा सम्बन्धी विचार अम्बेडकर के अधिक निकट हैं। लोहिया जीवन भर दलितों के लिये संघर्ष करते रहे परन्तु लोहिया के अनुयायी सत्ता के लालच में जोड़–तोड़ की राजनीति में व्यस्त हो गये। लोहिया के राजनैतिक आदर्शों पर चलने का दावा करने वाले पूंजीवादी व्यवस्था के हाथों नाच रहे हैं। जातिवाद और परिवारवाद के विरोध का डंका पीटने वाले लोहियावादी आज सर्वाधिक जातिवादी और परिवारवादी हैं। इन परिस्थितियों में लोहियावाद से दलितों का मोहभंग होना सुनिश्चित था।

मार्क्सवाद, गाँधीवाद और लोहियावाद से मोहभंग के पश्चात् एक राजनैतिक दर्शन जिसे आज के दलितों ने अंगीकार किया है, वह है अम्बेडकरवाद। बाबा साहब ने राजनैतिक सत्ता को सभी बन्द तालों की चाबी कहा है। यद्यपि डॉ. अम्बेडकर को अपने जीवन काल में दलित राजनीति को स्थापित करने में कोई विशेष सफलता नहीं मिली परन्तु उन्होंने दलितों के लिये स्वतन्त्र राजनीति का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। उनके चिन्तन ने दलित वर्गों को गहराई से प्रभावित किया क्योंकि उनके चिन्तन ने दलित अस्मिता एवं स्वाधीनता के जो सवाल उठाये थे, वे एकदम विचारोत्तेजक एवं क्रान्तिकारी थे। उनका राजनैतिक दर्शन दलितों को अपने अधिकारों के लिये संघर्ष की प्रेरणा देता है। अम्बेडकर का दर्शन सामाजिक–न्याय की स्थापना व वर्ण–व्यवस्था के अन्त का आह्वान करते हुए उसके विरुद्ध आक्रोश, निषेध और विद्रोह की मशाल जलाता है। निष्कर्षतःनये दौर में दलितों का राजनैतिक–दर्शन बाबा साहब अम्बेडकर के दर्शन पर आधारित है।

भारतीय समाज मूलतः धार्मिक समाज है। जहाँ सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्रियाकलाप धर्म द्वारा संचालित होते हैं। हिन्दू धर्म द्वारा पोषित वर्ण–व्यवस्था से पीड़ित दलित मध्यकाल से आधुनिक काल तक धर्म–परिवर्तन के माध्यम से अस्पृश्यता के अन्त का प्रयास करते रहे। इस्लाम के आगमन पर इस्लाम की शरण ली, ईसाइयत के समय ईसाई बने और सिक्खिज़्म के उदय पर सिक्ख बन गये। बाबा साहब अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में दलितों का बौद्ध धर्म में बड़े पैमाने पर धर्मान्तरण कराया। अम्बेडकर ने अन्य धर्मों के ऊपर बौद्ध धर्म को इसलिए प्राथमिकता दी क्योंकि वह एक स्वदेशी धर्म था और समता का उपदेश देता था।

अम्बेडकर के पदचिह्नों पर चलते हुए बौद्ध धर्म को

ग्रहण करने की परम्परा आज भी दलित समुदाय में प्रचलित है। इस नये दौर में अनुसूचित जाति का धर्म–परिवर्तन बौद्ध धर्म में तथा अनुसूचित जनजाति का धर्मान्तरण ईसाई धर्म में हो रहा है। दलितों की इस धार्मिक मुक्ति का विरोध ब्राह्मणवादी पूरी शक्ति से कर रहे हैं।

वहीं दूसरी ओर आज के दलित विचारक और लेखक अपने लिए अभी भी एक अलग धर्म और जीवन–दर्शन की तलाश में हैं। ऐसे विचारक दलितों के लिये स्वतन्त्र धर्म को तैयार करने के मार्ग पर अग्रसर हैं। इनका मत है कि इस्लाम, ईसाई और बौद्ध धर्म में धर्मान्तरण से दलितों की सामाजिक और आर्थिक दुर्दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। दलित धर्म की खोज करने वालों में डॉ. धर्मवीर का नाम अग्रणी है। डॉ. धर्मवीर बाबा साहब द्वारा अपनाये गये बौद्ध धर्म को त्याग कर स्वतन्त्र धर्म को खोजने पर बल देते हुए मासिक पत्रिका 'हंस' मार्च 1998 में प्रकाशित अपने लेख 'दलित चिन्तन का विकास : अभिशप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर' में कहते हैं– ''दलित चिन्तन को सबसे और पहला और भारी धक्का ढ़ाई हजार साल पहले बुद्ध के रूप में लगा था। उस धक्के और धोखे से दलित चिन्तन आज तक उबर नहीं सका है। डॉ0 अम्बेडकर के रूप में वह इस धोखे में फँसता ही जा रहा है। इस दलदल से निकलने का उसके पास अभी कोई पक्का और मुकम्मिल उपाय नहीं है। असल फर्क वही है कि राजकुमार बुद्ध संघर्षशील दलित का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते थे। वास्तव में बुद्ध ने केवल अपनी लड़ाई लड़ी थी, वह भी ठीक तरह से नहीं लड़ी थी। उनका दलित की समस्या से कुछ लेना–देना नहीं था। बुद्ध की समस्या एक साधन सम्पन्न व्यक्ति की समस्या थी, ऐसी समस्या का समाधान दलित के लिये किसी गलत मतलब का नहीं हो सकता। नुकसान यह हुआ कि आज के दलित ने बुद्ध के बहकावे में आकर अपने स्वतन्त्र चिन्तन की खोज करनी छोड़ रखी है।''[16]

डॉ. धर्मवीर बौद्ध चिन्तन को दलितों का चिन्तन न मानकर पराया चिन्तन मानते हैं। वह सभी धर्मों को नकारते हुए दलित–धर्म की घोषणा करते हैं। इस धर्म में लोकायत से लेकर निर्गुण संत मत तक की परम्परा समाहित है। वह दलित संतों के निर्गुण धर्म को 'स–ईश्वर लोकायत' कहते हैं और लोकायत दर्शन को 'निरीश्वर निर्गुण धर्म' का नाम देते है। वह अपने लेख 'दलितों का दर्शन क्या हो ?में दलित धर्म को स्पष्ट करते हुए कहते हैं –''दलितों का अपना धर्म अलग ही है। यह उनकी अपनी परम्परा का धर्म है। वे धर्म के रूप में बहुत कुछ और बहुत दूर से मानते आ रहे हैं। उनके धर्म का आदि रूप भी था और वह विकसित भी हुआ है। कभी–कभी वह संघर्षों में दूसरों से प्रभावित होकर चला है तो कभी उसकी अपनी धारा बहुत पवित्र हुई है। संसार के सभी अन्य धर्मावलम्बियों की तरह वह एक समय जादू–टोने में विश्वास करता रहा है, पर विकसित रूप में उसके धर्म की निर्मल काव्यधारा दलित संतों के निर्गुण गायक बनने में प्रवाहित हुई है। उत्तर भारत में इकतारे पर गदगद करते हुए बरसी रैदास की पवित्रता और कबीर की शक्ति उसके धार्मिक हृदय को हमेशा मोहे रहती है।''[17]

मनुष्यों के लिए धर्म बना है न कि धर्म के लिए मनुष्य। अतः यदि कोई व्यक्ति किसी धर्म में सम्मिलित होकर प्रसन्नता का अनुभव करता है या नये धर्म की स्थापना कर शान्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है। दोनों ही स्थितियाँ लोकतन्त्र एवं धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये सुखद हैं।

डॉ. इकरार अहमद
एसोसिएट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग
विवेकानन्द ग्रामोद्योग महाविद्यालय
दिबियापुर–औरैया (उ.प्र.)
मोबा.–09412068566

संदर्भः—

1. जगजीवन राम, भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, पृष्ठ 82
2. सं.—डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, दलित साहित्य, पृष्ठ 1, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
3. वही, पृष्ठ 17
4. पूर्वोद्धृत—वही, पृष्ठ 39
5. भोपाल दस्तावेज, पृष्ठ 15, मध्य प्रदेश शासन, वल्लभ भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण, 2002
6. रजत रानी 'मीनू', नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, पृष्ठ 1—2, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1996
7. एम.एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृष्ठ 26, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सातवीं आवृत्तिः 2003
8. सं—अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आईने में दलित, पृष्ठ 144, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण : 2004
9. मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आन्दोलन, पृष्ठ 99, बुक्स फॉर चेन्ज, नयी दिल्ली, पहला संस्करणः 2004
10. राजकिशोर, जाति कौन तोड़ेगा ?पृष्ठ 97, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण : 2002
11. पूर्वोद्धृत— दिनेश राम, दलित मुक्ति का प्रश्न और दलित साहित्य, पृष्ठ 8, श्री साहित्यिक संस्थान, लोनी बार्डर, गाज़ियाबाद, प्रथम संस्करण, 2002
12. वही, पृष्ठ 14
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ 29, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण : 2001
14 कंवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ 74
15. हंस (मासिक) पत्रिका, अगस्त 2004, पृष्ठ 217
16. पूर्वोद्धृत—विवेक निराला, निराला—साहित्य में दलित चेतना, पृष्ठ 37
17. सं.—राजकिशोर, हरिजन से दलित, पृष्ठ 145

दृश्य एवं श्रव्य मीडिया के विज्ञापनों के प्रभाव का आर्थिक विश्लेषण

– पूजा जैन

शोध सारांश :— किसी भी उद्योग या व्यवसाय का मुख्य उद्धेश्य अपनी उत्पादित वस्तु या सेवा को ग्राहक तक कुशलतापूर्वक, कम से कम खर्च में, लाभपूर्वक पहुंचाना होता है। कुछ ग्राहक वस्तु या सेवा को तुरंत खरीदने की स्थिति में होते है लेकिन कुछ ग्राहक उसे खरीदने की सोच रहे होते है। ग्राहक प्रतिस्पर्धापूर्ण बाजार में उसकी ही वस्तु खरीदे (चाहे अभी, चाहे बाद में), यह भाव ग्राहक के मन में बैठाए बिना उसकी वस्तु की बिक्री नहीं होती। यह काम विज्ञापन करता है जो अपनी वस्तुओं की विशेषताओं को बताकर उसे दूसरे उत्पादकों की वस्तुओं से उत्तम, श्रेष्ठ, मजबूत, टिकाऊ, असरदार व अधिक उपयोगी बताकर वस्तुओं को खरीदने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार विज्ञापन वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के साथ—साथ ग्राहक निर्माण का भी काम करता है।

संक्षिप्त में कहें तो विज्ञापन बिक्री बढ़ाने का साधन है। विज्ञापन के माध्यम से असंख्य लोगों तक वस्तु या सेवा का नाम व उसके बारे में जानकारी पहुंचाने का काम किया जाता है। वास्तव में विज्ञापन सेल्समैन का स्थान तो नहीं ले सकता लेकिन उसकी वस्तु विक्रय में मदद अवश्य करता है। विज्ञापन से ग्राहक को वस्तु के बारे में सब कुछ जानकारी पहले से ही हो जाती है कि कौन सी नई वस्तु बाजार में आई है, नई वस्तुओं के गुणों से, कीमत एवं उपयोगिता से भी परिचित हो जाता है।

बीज शब्द :— विज्ञापन, विक्रय, व्यवसाय, उपभोक्ता, उत्पाद।

प्रस्तावना :– आधुनिक युग विज्ञान युग के साथ–साथ विज्ञापन का युग है। क्योंकि इसके बिना किसी भी वस्तु या सेवा को बेचना असंभव हो गया है। वस्तु या सेवा के साथ ही आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैवाहिक, फिल्मी जगत, सार्वजनिक कार्यक्रमों आदि को प्रसारित करने के लिए भी विज्ञापन का सहारा लिया जाता है। विज्ञापन करने के लिए दृश्य एवं श्रव्य मीडिया जैसे रेडियों, टेलीविजन, सिनेमा, मोबाइल आदि माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। जिसकी पहुंच आज समाज के विभिन्न वर्गो तक बहुत आसान हो गई है। दृश्य एवं श्रव्य मीडिया की पहुंच शहरी क्षेत्र के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्र में भी हो गई है। आज के समय में विज्ञापन से समाज के विभिन्न वर्गो जैसे–उत्पादक, उपभोक्ता, विक्रेता, सरकार एवं समाज आदि को अनेकों लाभ प्राप्त होते है। इंग्लैडं के भूतपूर्व प्रधानमंत्री विलियम ग्लैडस्टोन ने कहा था कि "व्यवसाय के लिए विज्ञापन का वही महत्व है जो उद्योग में भाप शक्ति या चालक शक्ति का है" वाटसन ने ठीक ही कहा है कि "हम जहाँ कहीं है, विज्ञापन हमारे साथ है"। विज्ञापन एवं प्रकाशन का दावा है कि " मैं वर्तमान की आवाज हूं। भविष्य का बना हूं तथा भूतकाल के आवरण का तना हूं। मैं शांति एवं युद्वदोनों की कठिनाइयां समान रूप से बताता हूं। मैं प्रकाश, ज्ञान तथा शक्ति हूं।"[1]

1. व्यापार पर प्रभाव :– आज का युग विज्ञापन का युग है। इसके बिना आधुनिक व्यापार की उन्नति संभव नहीं है। आज तो प्रत्येक वस्तु का विज्ञापन किया जाता है। यहां तक कि अपने जीवन साथी की तलाश के लिए भी विज्ञापन किया जाता है, नौकरी देने या लेने के लिए विज्ञापन किया जाता है। प्रातः आंख खोलने से रात्रि में बिस्तर पर लेटने तक विज्ञापन ही विज्ञापन दिखाई देते है। सारांश में, सारा युग विज्ञान युग के साथ विज्ञापन का युग बन गया है। बाजार क्षेत्र के विस्तृत हो जाने के कारण वृहत संचार आवश्यक हो गया है जिससे उचित लागत पर वृहत बाजारों तक पहुंचा जा सके। विज्ञापन भी वृहत संचार हेतु प्रयुक्त किया जाने वाला एक उपकरण ही तो है। वाटसन ने ठीक ही कहा है कि "हम जहाँ कहीं है, विज्ञापन हमारे साथ है "। यह न केवल एक बड़ी व्यावसायिक शक्ति है वरन् आधुनिक संस्कृति का निर्माता भी है। व्यावसायिक क्षेत्र में तो विज्ञापन का महत्व दिनों–दिन बढ़ता ही जा रहा है। कोई भी व्यवसाय बिना विज्ञापन के जीवित रहने की कल्पना नहीं कर सकता है। व्यावसायिक दृष्टि से विज्ञापन के कई अनुकूल प्रभाव है। जिसके कारण ही प्रत्येक व्यवसायी यह महसूस करने लगा है कि विज्ञापन व्यापार के लिए लाभप्रद है।

2. विक्रय एवं वितरण पर प्रभाव :– किसी भी व्यवसाय के विक्रय को बढ़ाने के लिए विज्ञापन का प्रभावशाली होना अति आवश्यक है। एक प्रभावशाली विज्ञापन का सीधा प्रभाव वस्तु के विक्रय पर पड़ता है। विज्ञापन विशेषज्ञ की विक्रय संवर्द्धन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक उदाहरण बहुत चर्चित रहा है वह यह है कि कोलगेट टूथपेस्ट की बिक्री वृद्धि अनुरूप नहीं हो रही थी। तब विज्ञापन विशेषज्ञों ने आपस में सलाह की, कि बिक्री को कैसे बढ़ाया जाए। तब यह निष्कर्ष निकला कि टूथपेस्ट जहां से निकलता है वह स्थान (उद्‌गम) और अधिक चौड़ा कर दिया जाये तो विक्रय संवर्द्धन ज्यादा हो सकता है, उसका सीधा तर्क यह था कि उपभोक्ता ट्यूब पर उतना ही प्रेशर देगा जितना पहले देता था, पर पहले की अपेक्षा ज्यादा पेस्ट बाहर निकलेगा अब उपभोक्ता उसे वापस ट्यूब में डालने से तो रहा अतः वो इसका उपभोग करेगा और

अधिक उपभोग के कारण विक्रय अधिक होगा और वाकई ऐसा हुआ भी।

विक्रय पर प्रभाव :— वर्तमान में हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी सबसे बड़ी विज्ञापनदाता कंपनी है। जिसे पूर्व में हिंदुस्तान लिवर लिमिटेड कंपनी के नाम से जाना जाता था। जिसकी स्थापना 17 अक्टूबर 1933 को हुई थी। तभी से ही विज्ञापन द्वारा इसकी वस्तुओं का विक्रय किया जा रहा है। हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी को भारतीय बाजार का राजा कहते है। इसके 20 से अधिक श्रेणियों में 35 से भी अधिक ब्रांडस है। भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र दोनों में ही कोई ऐसा घर नहीं होगा जहां कभी हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी का उत्पाद नहीं पहुंचा हो। जैसे— लक्स, लाइफबॉय, डव, फेयर एंड लवली, लिरिल, क्लोज अप, सर्फ एक्सेल, रेकसोना, एक्टिव व्हील डिटर्जेंट, सनसिल्क शेंपु आदि इसके उत्पाद है। यह कंपनी कई तरह के सौन्दर्य प्रसाधन वस्तुओं का उत्पादन करती है और इन्हें अप्रत्यक्ष विपणन प्रणाली अपनाकर शहरी एवं ग्रामीण उपभोक्ता तक पहुंचाती है और इन मध्यस्थों के माध्यम से सौन्दर्य प्रसाधन वस्तुओं का विक्रय किया जाता है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के विज्ञापन कंपनी की विपणन प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, विज्ञापन के माध्यम से ग्रामीण मांग की जानकारी होती है तथा मांग के अनुसार ही कंपनी अपने मध्यस्थों को विभिन्न क्षेत्रों में भेजती है तथा यह मध्यस्थ ही एजेन्सी के द्वारा ग्रामीण मांग की पूर्ति करते है। हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी के पिछले पांच वर्षो के आधार पर इसके प्रभावों को ज्ञात किया गया है, पिछले पांच वर्षो का विक्रय इस प्रकार है :—

हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी का विक्रय

क्रमांक	वर्ष	विक्रय (करोड़ों में)
1	2015-16	32929.00
2	2016-17	33895.00
3	2017-18	34619.00
4	2018-19	37660.00
5	2019-20	38273.00

(स्त्रोत :— कंपनी के वार्षिक प्रतिवेदन के आधार पर)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी की 2015-2016 से 2019-20 तक लगातार विक्रय में वृद्धि हो रही है। वर्ष 2015-2016 में विक्रय 32929.00 था जो 2016-2017 में 33895.00 हो गया। 2017-2018 में विक्रय 34619.00, 2018-19 में विक्रय 37660.00 एवं 2019-20 में विक्रय 38273.00 हो गया। अतः स्पष्ट है कि कंपनी के विक्रय में लगातार वृद्धि हो रही है, जो उत्पादन के प्रयोग को दर्शाती है।

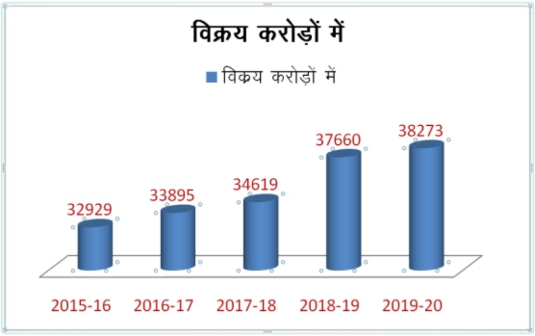

लाभ पर प्रभाव :— विज्ञापन मांग को बढ़ाकर उत्पादन में वृद्धि करता है और उत्पादन में वृद्धि उत्पादन लागतों में कमी करता है। उत्पादन लागतों में कमी होने से कीमत भी अपेक्षाकृत कम होती है। इससे विक्रय में वृद्धि होती है तथा संस्था के लाभों में भी वृद्धि होती है। यही नहीं विज्ञापन एवं वितरण व्ययों में कमी करके भी संस्था की वस्तुओं के मूल्य को प्रतियोगी बनाये रखता है और विक्रय वृद्धि में सहायता करता है, जिससे लाभ बढ़ते है और व्यवसाय का विस्तार होता है, हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी का पिछले पांच वर्षो के लाभ इस प्रकार है:—

लाभों का विश्लेषण

क्रमांक	वर्ष	लाभ (करोड़ों में)
1	2015-16	4137
2	2016-17	4490
3	2017-18	5237
4	2018-19	6036
5	2019-20	6738

(स्त्रोत :– कंपनी के वार्षिक प्रतिवेदन के आधार पर)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिंदुस्तान युनिलिवर लिमिटेड कंपनी की 2015-2016 से 2019-20 तक लगातार लाभ में वृद्धि हो रही है। वर्ष 2015-2016 में कंपनी का लाभ 4137 था जो 2016-2017 में 4490 हो गया। 2017-2018 में लाभ 5237, 2018-19 में लाभ 6036 एवं 2019-20 में लाभ 6738 हो गया। अतः कुल पांच वर्षो में इसमें लगातार वृद्धि हुई है। अतः स्पष्ट है विक्रय में लगातार वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि हुई और बढ़ता हुआ उत्पादन प्रति इकाई लागत में कमी करता है। उत्पादन लागत में कमी होने से संस्था की वस्तुओं का मूल्य अधिक ऊंचा नहीं हो पाता और संस्था का विक्रय बढ़ता है, जिससे पुनः उत्पादन एवं लाभ में वृद्धि होती है। इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :–

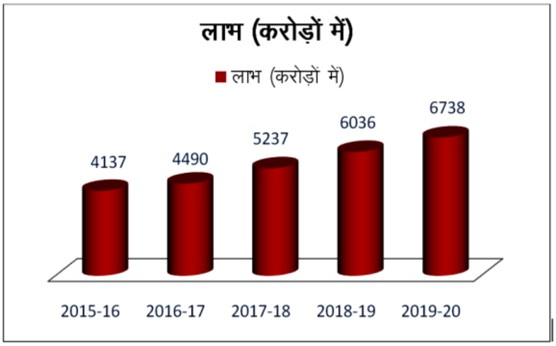

3. उपभोक्ताओं पर प्रभाव :– आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में समान उपयोगिता के अनेक उत्पाद बाजार में उपलब्ध है। इससे उपभोक्ताओं को वस्तुओं का चुनाव करने में सुविधा रहती है, क्योंकि मध्यस्थों के पास उत्पादकों की कई वस्तुएं होती है। जिससे वस्तुओं की तुलना की जा सकती है। कोई भी विज्ञापन तैयार करने से जाता है। यदि विज्ञापन से उपभोक्ता आकर्षित होते है तो विज्ञापन को सफल माना जाता है। शोध में यह पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र में सौन्दर्य प्रसाधन व अन्य गृह उपयोगी सामान महिलाओं द्वारा कय किया जाता है और ग्रामीण महिलाएं सौन्दर्य प्रसाधन वस्तुओं के विज्ञापन से पुरूषों की तुलना में अधिक प्रभावित होती है। खासतौर पर विज्ञापन महिला उपभोक्ताओं को प्रभावित करने वाले ही होते है। विज्ञापन को आकर्षित बनाने के लिए 'एडा (AIDA) फार्मूला' अपनाया जाता है। जिसमें A का अर्थ है– Attracting Attention (ध्यानाकर्षण), I का अर्थ है– Interest (रूचि उत्पत्ति), D का अर्थ है– Desire (इच्छा उत्पत्ति), A का अर्थ है– Action (कर्मण्यता) है।

- **ध्यानाकर्षण** :– प्रभावी विज्ञापन के लिए विज्ञापन अपील तैयार करते समय अधिकतम ध्यान ध्यानाकर्षण तत्व पर दिया जाना चाहिए क्योंकि जब तक ग्राहकों का ध्यान ही विज्ञापन की ओर नहीं जाएगा तब तक वे क्रय के लिए इच्छा अथवा प्रयास नहीं कर सकेंगे।
- **रूचि उत्पत्ति** :– विज्ञापन संदेश में ग्राहकों की रूचि उत्पन्न करने के लिए कुछ ऐसी बातें तथा गुण निहित होने चाहिए जो ग्राहकों में स्वाभाविक रूचि पैदा कर सके। विज्ञापित संदेश की भाषा, विषय, शैली, कहने वाला, उनके कहने का तरीका आदि वे आवश्यक बातें है जिन पर रूचि उत्पन्न

कर सकती है। विज्ञापन आम आदमी की रूचि के अनुरूप होना चाहिए।

- **इच्छा उत्पत्ति** :– इच्छा उत्पत्ति इस धारणा पर आधारित है कि जब तक वस्तु या सेवा जिसका विज्ञापन किया गया है, ग्राहक के लिए लक्ष्य अथवा उसकी आवश्यकता–संतुष्टि के साधन के रूप में प्रस्तुत न की जाये, तब तक ग्राहक वस्तु या सेवा का क्रय नहीं करता है। अतः विज्ञापन मानवीय भावनाओं तथा प्रवृत्ति पर आधारित होना चाहिए।
- **कर्मण्यता** :– इसके अन्तर्गत प्रत्येक वितरक फर्म विज्ञापनों की सहायता से वस्तुओं के क्रय को यथाशीघ्र सम्भव बनाने का प्रयास करती है। इसके अन्तर्गत निम्न सिद्धांतों पर जोर दिया जाता है–

  - सुझाव का सिद्धांत।
  - पुनरावृत्ति का सिद्धांत।
  - विश्वासोत्पत्ति का सिद्धांत।
  - संवर्द्धनात्मक क्रियाओं का सिद्धांत।
  - समय सीमा का सिद्धांत।

4. उत्पादक वर्ग पर प्रभाव :– वर्तमान युग में विज्ञापन अत्यंत ही महत्वपूर्ण है बिना विज्ञापन के किसी भी उत्पादक को सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है। ग्राहक किस प्रकार की वस्तु खरीदेगा, कहां से खरीदेगा, वस्तु खरीदते समय किस बात का ध्यान रखता है, वस्तु का आकार व रूप, रंग किस प्रकार का होगा। ये सभी विज्ञापन के द्वारा संभव है। विज्ञापन के द्वारा ही उत्पादकों को उपभोक्ताओं की जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी के आधार पर ही उत्पादक वस्तुओं को ग्रामीण क्षेत्रों की दुकान, गांवों के बाजार, हाट बाजार, मोहल्ले की दुकान आदि में भेजते है, जिनसे वे उपभोक्ता तक आसानी से पहुंच जाती है।

निष्कर्ष :– वर्तमान समय में अधिकाधिक लोग दृश्य एवं श्रव्य मीडिया का प्रयोग कर रहे है। लगभग 80 प्रतिशत उपभोक्ता इनके विज्ञापनों से प्रभावित होकर वस्तुओं का क्रय कर रहे है और अपनी आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन विज्ञापित वस्तुओं पर व्यय करते है। इसी कारण से वर्तमान में सौन्दर्य प्रसाधन, खाद्य पदार्थ, वाशिंग एंड क्लिनिंग मटेरियल एवं विविध वस्तुएं हिन्दुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड कंपनी द्वारा बाजारों में वितरित की जा रही है। विश्लेषण से यह तथ्य सामने आया है कि उपभोक्ता की उपभोग वृत्ति पर दृश्य एवं श्रव्य मीडिया पर दिखाये गए विज्ञापनों का गहरा प्रभाव पड़ा है क्योंकि वे मीडिया पर प्रसारित विज्ञापन को देखकर वस्तुओं का क्रय कर रहे है और इन वस्तुओं का चयन विज्ञापनों से प्रभावित होकर करते है, जो उनके परिवार तथा आय को बहुत सीमा तक प्रभावित करते है।

पूजा जैन
सहायक प्राध्यापक, हाजरा मेमोरियल महाविद्यालय,
मल्हारगढ़ (खालवा) म.प्र.
मोबा. 8982967637

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. विज्ञापन एवं ब्रांड प्रबंध ब्रिलियंट्स, नाकोड़ा पब्लिशर एवं प्रिंटर्स, प्रकाशन वर्ष 2010
2. कुमार सुशील, ग्रामीण विकास एवं क्षेत्रीय नियोजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2004
3. भदादा, बी.एम. विपणन प्रबंध के सिद्धान्त एवं व्यवहार, रमेश बुक डिपो, जयपुर, 1990
4. हिन्दी विज्ञापनों का पहला दौर–आशुतोष पार्थेश्वर, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, 2017
5. विज्ञापन की दुनिया–कुमुद शर्मा–प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली,2010
6. आधुनिक विज्ञापन कला एवं व्यवहार–डॉ. अर्जुन तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2010
7. हिंदी विज्ञापनः भाषिक तथा शैलीगत विश्लेषण–डॉ. कौशल्या–अमन प्रकाशन,कानपुर, 2016

हिन्दी व्यंग्य साहित्य के विकास में हिन्दी व्यंग्यकारों का योगदान

– डॉ. अनामिका कतरौलिया PH.D., NET

हिन्दी में व्यंग्य परम्परा बहुत पुरानी है। वैदिक साहित्य में एक स्थल पर चार्वाक कहता है ''मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा, अगर एक का खाया अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता है तो परदेश जाने वालों का भी श्राद्ध किया जाना चाहिए।''[1]

यहाँ श्राद्ध के प्रति अंधभक्ति के उपर व्यंग्य किया है। इसी तरह महाभारत के अनेक प्रसंगो में व्यंग्य के सूत्र मिलते दिखलाई पड़ते हैं।

व्यंग्य का मूल कारण तत्कालीन विसंगतियां रही है। जिस काल में विसंगतियां जितनी अधिक रही है, उस काल में व्यंग्यकार का कार्य भी उतना अधिक बढ़ गया है। वीरगाथा काल में इतिहास रक्त रंजित था, जो साहित्य रचा गया 'स्वामित्व सुखाय' की भावना लिए था। इसी प्रकार भक्तिकाल में भक्ति की चेतना प्रबल रही थी। इसी कारण व्यंग्य की धारा का अपेक्षित विस्तार नहीं हो पाया था। कबीरदास जी ने धर्मिक आडम्बरों एवं सामाजिक विसंगतियों को व्यंग्य का स्वर दिया है। इसी कारण कबीर जी को हिन्दी साहित्य के प्रथम व्यंग्यकार की संज्ञा दी गयी।

व्यंग्य साहित्य की एक विधा या शैली मात्र है। हिन्दी साहित्य में व्यंग्य पहले विधा के रूप में नहीं शैली के रूप में प्रयुक्त हुआ। विद्याएं तो कविता, कहानी, उपन्यास नाटक और निबंध है लेकिन आज व्यंग्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा बन गयी है। उसका विस्तार इतना अधिक हो गया है कि, उसने सब विधाओं को अपने में ओढ़ लिया है। जिनमें एक यह है व्यंग्य एक साहित्यिक कला है जो विषय या वस्तु को उपहास बनाकर इसे घटाती है और इसके लिए मनोरंजन, घृणा शेष या तिरस्कार की दृष्टि पैदा करती है।

कथा व्यंग्य को साहित्य की सीमा में बांधना उचित होगा? कथा व्यंग्य चित्र में व्यंग्य का पुट नही होता है इसे और साफ करने के लिए आगे कहा गया है कि, व्यंग्य का मद से इसलिए भिन्न है कि, कामदी हास्य को पैदा करती है, जो अपने में साध्य है, जबकि व्यंग्य उपहासता है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में व्यंग्य विधा का उदय एक विलक्षण घटना थी। इस समय की लगभग सभी पत्र–पत्रिकाओं में व्यंग्य लेखन देखने को मिल जाता है। इस समय साहित्यकारों ने समाज का यथार्थ चित्र खींचा। बुराई के प्रति तीक्ष्णता के साथ प्रहार करने की शक्ति व्यंग्य–विधा के अंतर्गत ही है। वर्तमान परिस्थितियों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए व्यंग्य विधा ही एकमात्र साधन है। हिन्दी की सभी विधाओं में व्यंग्य के आने का प्रमुख कारण यही था। स्वतंत्रता पूर्व का व्यंग्य नयी–नवेली दुल्हन था जो कठोर बात भी मृदुभाषी बनकर करता था लेकिन स्वतंत्रता के बाद का व्यंग्य प्रौढ़ हो गया जो हर बात को बगैर किसी डर और लज्जा के कह रहा है।

हिन्दी व्यंग्य विधा के विकास में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, लतीफ घोंघी, श्रीलाल शुक्ल, अमृतराय, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, डॉ. नरेन्द्र कोहली, रवीन्द्रनाथ त्यागी, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, केशवचन्द्र मदान आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन सभी व्यंग्यकारों ने विशाल तथा तीक्ष्ण दृष्टि रखते हुए अनाचार, व्यभिचार, अवसरवाद, अन्याय, अत्याचार,

कथनी एवं करनी में विसंगति को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में व्यंग्य बेफिक्र होकर 'चोर को चोर' कहने का साहस करने लगा। जिससे 1960 के लगभग 'व्यंग्य' विधा के रूप में स्थापित होना शुरू हुआ। 1960 का दशक ही व्यंग्य के लिए अधिक उर्वर काल था। इस समय की परिस्थितियों में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, छद्‌म पाखण्ड, दो–मुँहापन, अन्याय व्याप्त था इसी परिस्थितियों के कारण व्यंग्य का विकास और तीव्र पहचाना लोगो को समाज के प्रति बदलाव लाने एवं भला सोचने में मजबूर होना पड़ा। व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है यही कारण है कि अन्य विधाओं की अपेक्षा व्यंग्य ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का दायित्व अपने ऊपर लिया।

प्रारंभिक व्यंग्य व्यक्ति केन्द्रित था परन्तु बाद में ये धार्मिक पाखण्डों उसके सामाजिक बुराईयो को व्यंग्य विषय बनाने लगा। वर्तमान राजनीति के साथ सभी विषय व्यंग्य के आहार है जिनको वह ग्रहण कर लेता है। व्यंग्य ने सामान्य मनुष्य के अंदर राजनैतिक एवं सामाजिक समझदारी पैदा की। 'समाजवाद', 'गरीबी हटाओं', आदि नारों के खोखले हुए अर्थ को व्यंग्यकारों ने ही जनता के सामने रखा। व्यंग्य की शक्ति वर्तमान में इतनी बढ़ गयी है कि यह मनुष्य की चेतना को झकझोर कर लोगों को विचार करने के लिए मजबूर कर देता है।

व्यंग्य की नई पीढ़ी के सन्दर्भ में 'श्याम सुन्दर घोष' का कथन है कि – ''व्यंग्य का पौधा यथार्थ की गहरी जानकारियों, मानवीय रिश्तों, मनोभावों को पुष्ट तथा परिपक्व संवेदनाओं की जमीन पर उगता है। वह उपर–उपर जितना तथा जैसा दिखता है ठीक वैसा ही और उतना ही नहीं होता है। व्यंग्य का एक अलक्षित स्वभाव और चरित्र भी होता है वह पर्दे के पीछे रहकर भी अपनी ओजस्विता और तेजस्विता का संकेत भी देता रहता है।''[2]

श्री हरिशंकर परसाई जी ने व्यंग्य विधा के विकास का प्रारंभिक स्वरूप प्रदान किया। इनकी दृष्टि एवं सर्जना ने बाद के व्यंग्यकारों के लिए आदर्श मंच स्थापित किया।

परसाई जी की शक्ति को पहचानते हुए 'बालेन्दु शेखर तिवारी जी'' लिखते हैं कि ''व्यंग्य विधा को स्थापित करने में परसाई ने वस्तु और शैली के स्तर पर अर्थ गर्भ सर्जना की है। उनका व्यंग्य लेखन पारम्परिक रूपों और घिसी हुई मर्यादाओं को नकार कर भूमि का विधान करता है।''[3]

हरिशंकर परसाई जी ने हिन्दी व्यंग्य विधा का एक मानक स्वरूप तैयार किया। परसाई जी ने 'परिवर्तन', 'वसुधा', 'प्रहरी' आदि अनेक पत्रिकाओं से जुड़कर व्यंग्य को शिखर पर बैठाने का कार्य किया। हरिशंकर परसाई जी ने अपने लेखन में राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं पर कठोरता से प्रहार किया एवं सामाजिक कुरीतियों की तरफ सबका ध्यान आकर्षित करवाया। परसाई जी ने 'कल्पना में कालम लेखन', 'और अन्त में', 'सारिका' में कबीर खड़ा बाजार में 'मामा' में, 'मैं कहता आँखन देखी', 'हिन्दी व्यंग्य' में 'माटी कहे कुम्हार से', 'नई दुनिया' में 'सुनों भाई साधों', 'नई कहानियाँ' में 'पाँचवा कॉलम' लिखकर व्यंग्य का खूब प्रचार किया।

हरिशंकर परसाई जी के बाद शरद जोशी हिन्दी साहित्य के दूसरे बड़े व्यंग्यकार है इन्होने तत्कालीन विद्रूपताओं को व्यक्त करने के लिए 'ताल–बेताल', 'परिक्रम', 'बैठे ठाले', 'नावक के तीर' आदि स्तंभों का लेखन किया। जोशी जी ने भी राजनीतिक, साहित्य, प्रशासन एवं समाज के उपर करारा व्यंग्य करके जनता

के समक्ष इनका खोखला स्वरूप व्यक्त किया।

इसी प्रकार डॉ. शंकर पुणतांबेकर ने विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में स्तंभ लिखकर व्यंग्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। रवीन्द्र त्यागी ने सारिका में 'पराजित पीढ़ी' के नाम का स्तंभ लिखा। कृष्णचन्द्र चौधरी की 'तीसरी आँख' एवं अजात शत्रु 'बयान जारी है' – आदि स्तंभ लेख व्यंग्य रूपी पौधे को ऑक्सीजन एवं जल ले दे रहे हैं जिससे आगे जाकर वह विशाल वटवृक्ष का रूप ले सका है।

व्यंग्य के प्रारंभिक विकास काल में लतीफ घोंघी, डॉ. नरेन्द्र कोहली, राधाष्ण, डॉ. संसार चन्द्र, रवीन्द्रनाथ त्यागी, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, के.पी. सक्सेना, श्रीलाल शुक्ल, केशवचन्द्र वर्मा आदि ने अपना महत्वपूर्ण एवं उपयोगी योगदान दिया।

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी जी पटना से प्रकाशित 'ज्योत्स्ना' पत्रिका में प्रतिभास मिस्टर भारतेन्दु स्तंभ के अंतर्गत लिखते रहे हैं। इन्होंने विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखकर व्यंग्य के विकास के लिए सही पृष्ठभूमि तैयार की। व्यंग्य पत्रिका अभिका का 1973–75 तक संपादन किया। व्यंग्य विकास में इनका अतुल्य योगदान है।

सी–15, सेलटैक्स कॉलोनी, अक्षत गार्डन के पीछे, गुमास्ता नगर, इन्दौर–452009 (म.प्र.)
मोबा. 9407244196

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ मलय : व्यंग्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ – 19
2. श्याम सुन्दर घोष : व्यंग्य और विधा पृष्ठ – 60
3. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी : हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृष्ठ – 270

भूमंडलीकरण से बदलते गाँव सामाजिक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

– डॉ. दीपिका परमार

भूमंडलीकरण के चलते भारत की सामाजिक संरचना प्रभावित हुई है। पूंजी के मुक्त प्रवाह संचार माध्यमों की अधिकतम लोगों तक पहुँच व विज्ञापनों ने गाँव या शहर के बीच की खाई को कम करते हुए मानसिकता के स्तर पर गाँवों को शहर या कस्बों में परिवर्तित कर दिया है। नतीजा यह है कि आज गाँव के लोग उन सभी ब्रांडो का इस्तेमाल करते हैं जिन्हें आमतौर पर शहरों में इस्तेमाल किया जाता है। भूमंडलीकरण ने हमारा ग्राम्य बोध बदल दिया। संस्कृतिसेशन के तहत अब गाँव के लोग शहरी उत्पादकों का प्रयोग कर गर्व का अनुभव करते। अखिलेश का उपन्यास निर्वासन में इस समस्या को बहुत ही ज्वलंत ढंग से उठाया है। इस उपन्यास में आज का पूरा भारतीय गाँव अमेरिकोमुखि है। वह अमेरिका जाने के लिए लालायित है। इसके लिए वह अपनी जाति परंपरागत पहचान सब कुछ बदलने को तैयार है। कहा जाता है कि भारत में जाति नहीं बदलती लेकिन आज भूमंडलीकरण की हकीकत यह है कि पारंपरिक भारतीय सामाजिक संरचना को यह तोड रहा, लाभ व पैसे कमाना मुख्य हो गया है इसलिए शायद आज बहुत सारे लोग एस.सी. (S.C.) एस.टी. (S.T.) का फर्जी सर्टिफिकेट बनवाकर नौकरी करते है। यह बेहतर भविष्य की चाह में अन्तर्जातीय विवाह भी शुरु हो गए हैं। भूमंडलीकरण ने भारतीय गांवों को बहुत बुरी तरह प्रभावित किया है। अतिरिक्त मात्रा में कीटनाशकों या खादों के प्रयोग ने पारिस्थितिक संतुलन के साथ–साथ ही गुणवत्ता भी प्रभावित की है। पर्यावरण प्रदूषण बेरोजगारी जो मशीनों के अत्याधिक प्रयोग के चलते

पैदा हुई है। इसी का नतीजा है बोरवेल के प्रयोग के चलते हरितक्रांति के नाम पर अत्याधिक भूजल के दोहन ने सूखे की समस्या को जन्म दिया है। अधिक फ़लो की चाह में लगाये गये कलमी या दशहरी आमों के पेड़ों का नतीज़ा आज यह है कि शव जलाने के लिए बीजू आम की लकडी नहीं मिलती। मार्केट आज हमारे बेडरुम तक में घूसा है। इससे जहाँ एक तरफ स्त्रियों को एक हद तक स्वतंत्रता मिली है, वहीं अपराध में वृद्धि भी हुई है। रोजगार के लिए गांवों से विस्थापन बढ़ा है जिसके चलते महानगरों में दूसरे तरह की भाषायी या अन्य अस्मितामूलक समस्याएँ खड़ी हुई है। वंदना राग की कहानी में मुम्बई में उत्तरभारतीय लोगों के साथ आ रही इस तरह की समस्या को बखूबी उठाया गया है। कैलाश बनबासी की कहानी बाज़ार में रामधन यह दिखाती है कि किस तरह आज के समय में किसान को अपना बैल बेचना पड रहा। यानि मशीनीकरण ने उसे तकरीबन अनुपयोगी बना दिया हे। ऐसे में एक न एक दिन उसको अपना बैल बेचना ही पड़ेगा।

भूमंडलीकरण का एक नतीजा यह भी हुआ है कि अब हिन्दी कहानी से गाँव तकरीबन गायब हो चुका है। गाँव को केंद्र में रखकर बहुत कम लेखन हो रहा है। वैसे भी आज के गाँव में युवा पीढ़ी बची कहाँ है। सब तो दिल्ली, मुम्बई जा चुकी रोजगार के चक्कर में। राजकुमार तिवारी की चर्चित कहानी कुतुबएक्स्प्रेस इसी विस्थापन की पीड़ा को सामने लाती हे। इसका एक और बुरा परिणाम तमाम पारंपरिक खेलों, कलाओं के अस्तित्व पर पड़ता दिखाई दे रहा है। अब वे लुप्त हो रही है। और कहीं न कहीं बोलियाँ भी अंग्रेजी के दबाव के चलते हिन्दी के ऊपर मंडरा रहे खतरे से तो हम सब वाकिफ है ही। भूमंडलीकरण ने गांवों के प्रतिक व पारंपरिक फसल चक्र को बुरी तरह प्रभावित किया है। अब विदेशी बीजों से हम ऐसी फसलों को उगाने लगे है जो न मिट्टी को सूट करती है न मौसम को। नतीजा मिट्टी की अनुर्वरता बढ़ रही हे। अब लस्सी और मठे की जगह बच्चे कोल्ड्रींक पीते है और रोटी—पराठे की जगह पिज्जा खाना पसंद करते है। गाँव में लाईट भले न हो पर मोबाइल सबके हाथ में है। मार्केट हम में अलगाव पैदा करता है। सामूहिकता गांव की विशेषता हुआ करती थी। शादी—ब्याह में लोगों के घरों से बिस्तर, चारपाई, बर्तन तक पूरे गाँव के घरों से ही आते थे। खाना बनवाने के लिए लडकियाँ और खाना परोसने पुरुष सब घर से आते थे। पर आज सब कुछ टेंट हाउस से आता है और कैटरिन्स के जिम्मे रहता है। मांग के लाने को गरीबी से जोड़ दिया गया है। इस तरह से एक नए उद्योग का ही जन्म हो गया है। सामूहिकता की कीमत पर मार्केट का प्रभाव हमें दुर्गा व गणेश पूजा के दौरान दिखाई देता कि इसने गाँव को किस हद तक प्रभावित किया है। हज़ारों करोड़ का मार्केट है हम सबका। भूमंडलीकरण ने हमारे गांवों को बहुत बदला है। विज्ञापनों और टीवी फिल्मों आदि ने बच्चों को उम्र से पहले बड़ा करना शुरु कर दिया है। संस्कार जो कि गाँव की धरोहर समझे जाते थे वे आज खत्म हो रहे हैं। बड़ों के पैर छूना पिछड़ापन समझा जाता है व संयुक्त परिवार टूट रहे है। माँ—बाप को बच्चे अकेला छोड़ दे रहे हैं, बुढ़ापे में। किसान आत्महत्या का मामल भी इसी भूमंडलीकरण से जुड़ा है। ज्यादा नकदी कमाने के चक्कर में अनाप—शनाप फसलें बोना बेतरतीब विकास की अवधारणा के चलते प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय दोहन ने मौसम का चक्र भी बिगाड़ के रख दिया है। कभी ज्यादा गर्मी, कभी कम, कभी बाढ़ तो, कभी सूखा इससे फसलों के उत्पाद पर बुरा असर पड़ता है। और किसान इस परिवर्तन से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है।

नदियाँ उद्योगों के कचरे से विषाक्त हो चुकी हैं। फसलों को कई बार उनका पानी भी नुकसान पहुँचाता है। एक उपन्यास में इस बात का जिक्र है कि कैसे किसान पैसे के लालच में सागौन के पेड़ लगा रहे है। जिनके चलते बारिश उस इलाके में कम हो रही है और किसान उसकी सज़ा भुगत रहे सूखे में। इतना ही नहीं गाँव में आप किसी के घर जाओ तो वह आपको पेप्सी पिलाकर गर्व का अनुभव करता है। एक झूठे ढंग के संस्कृतिसेशन का भ्रम भी भूमंडलीकरण रच रहा है। जिसका शिकार हम सब हो रहे है। गाँव के लोग कम से कम जरुरतों में जीवनयापन करते थे किन्तु अब उनकी जरुरतें बाजार ने बढ़ा दी है। जिसके चलते तनाव विस्थापन जैसी कई अन्य समस्याओं ने भी जन्म लिया है। हमें इस व्यापक खतरे को समझते हुए इससे मुक्ति के प्रयास अभी से शुरु करने होंगे। अन्यथा इसके परिणाम बहुत भयावह होंगे। साहित्य की जिम्मेदारी यहाँ और भी ज्यादा है।

25, ड्रीम हाउस, सर्वोदय नगर सोसायटी
नेक्सा शोरूम के पास, लूनावाला हाईवे
गोधरा, जिला पंचमहल–389001 (गुजरात)
मोबा. 9687739050

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

(1) भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य
– डॉ. जिनो पी. वरगीस

(2) vijaymitra.com,
worldpress.com

(3) भूमंडलीकरण और हिन्दी सिनेमा
– प्रो. एम. वेंकटेश्वर
– साहित्य कुन्ज

(4) भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में साहित्य, समाज, संस्कृति और भाषा
– संपादक डॉ. प्रदीपकुमार सिंह

कविताएँ :–

आज का जमाना

– प्रवीण राही

हम जी रहे हैं इस जमाने में
जहां आदमी आतुर है आदमी को मिटाने में
औरत भी औरत नहीं पवित्रता की मूरत नहीं
जिसे देखो मानवता से आज अनजान है
गन्दी जबान है
रोते मकान हैं
हंसते शमशान हैं
हर जगह प्रदूषण है
गन्दगी बस्तियों का आभूषण है
राहों में भटकते इन्सान हैं
मंजिल से अनजान हैं
अपने गैर है
पड़ोसी से बैर है
रौशनी की भरमार है
फिर भी मन मस्तिष्क में अंधकार है
सुंदरता ऐप का कमाल है
हर मामले में गोलमाल है
जाने वह दिन कब आएगा
जब आदमी आदमी को गले लगाएगा।

NC-102, Anju Singh, IRTS, infront
Manokamna Temple, Near Rail chowk,
(little ahead of DRM office)
Moradabad- 244001
Mobile 8860213526

कहाँ से होगी चेहरे पर खुशी

– डॉ. धीरज वणकर

ठंड में ठिठुरता
जेठ की धूप में तपता
बारिश में भीगता
आंधी–तूफान में अडिग रहता
जगत का अन्नदाता किसान
एक लंगोटी पहने हुए
पसीने से लथपथ
सब का पेट भरता
किंतु खुद भूखा–नंगा सोता है।
वे क्या जाने जो
रोटी से खेलते है
बिना कुछ काम के मालामाल
संसद में मचाते रहते धमाल
ये बदनसीब किसान
मौसम की मार व कर्ज से मजबूर
करने लगे आत्महत्या
आह ! कृषि प्रधान देश हमारा
हो गया है कुर्सी प्रधान...
फिर भला कहां से होगी
किसानों के चेहरे पे खुशी।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
जी.एल.एस. फॉर गर्ल्स कॉलेज,
लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

लघुकथाएँ :–

कोरोना का कहर

– संतोष मालवीय

कोरोना ने धरती पर गज़ब ढाया क़हर है, गाँव की गलियाँ चुप, चुप सारा शहर है। मत पूछिये मेरे गाँव का हाल यारों घुल गया चारों दिशाओं में ज़हर है।

मन व्यथित है, अपनों के दूर रहने से कैसे कहूं कि वो मेरे लफ्ते ज़िगर है। भेज रहा हूँ, हवाओं के हाथों संदेशा चिड़ियाँ हर शाखा सुरक्षित रहे, जिस शाख पर तेरा शज़र है। सुलझना होगा । इस भयावह महामारी से सन्तोष घर में रहें, खुद नज़र बंद नहीं तो इसकी सब ओर नज़र है।

'पितृ महिमा' ज़ामा मस्जिद के पास, पचोर
जिला राजगढ़ (ब्यावरा) 465683 (म.प्र.)
मोबा. 9329169291

कोरोना

– पारस कुंज

कोरोना–काल का दूसरा दौर चल रहा था। अनलॉक–लॉकडाउन के बीच ही विधानसभा चुनाव की अधिसूचना जारी हो गई।

वेबीनार एवं वर्चुअल–कॉन्फ्रेंस द्वारा चुनाव सरगर्मी तेज होने लगी। विभिन्न राजनैतिक दल एवं निर्दलियों का चुनाव–प्रचार लगभग उसी प्रकार होने लगा।

इसी दरम्यान अपने कार्यकर्ताओं के बीच राज्य के मुख्यमंत्री का वर्चुअल–कॉन्फ्रेंस चल रहा था। वो विगत पंद्रह–साल अपने शासन की उपलब्धियों को गिनाते–गिनाते 'कोरोना' से बचने का रास्ता भी बताते जा रहे थे –

'... साथियों जब तक इस महामारी का अंत नही हो जाता। तब तक हमें मानव–दूरी बनाकर रखनी है।

बार–बार हाथों को साफ करते रहना है और अपनी नाक–मुँह को हमेशा मास्क से ढँके रखना है ! ...

तभी अचानक कॉन्फ्रेंस को देख–सुन रहे कार्यकर्ता के नौ वर्षीय पुत्र राहुल ने पिता से आश्चर्य व्यक्त करते पूछा – 'पापा ! पापा ! सीएम साहब किस मास्क से नाक–मुंह ढकने को कह रहे हैं ? ... वही जिसे वो खुद गले में लटकाए भाषण दे रहे हैं ? ... क्या 'कोरोना' उनके लिए ... ?'

संपादक : 'शब्दयात्रा', सीता निकेत
जयप्रभा पथ, भागलपुर–812 002 (बिहार)
व्हाट्एप : 620 133 4347

रोटी

– डॉ. लीला मोरे

रामेश्वर ने पत्नी के स्वर्ग वास हो जाने के बाद अपने दोस्तों के साथ सुबह शाम पार्क में टहलना और गप्पें मारना, पास के मंदिर में दर्शन करने को अपनी दिनचर्या बना लिया था।

हालांकि घर में उन्हें किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं थी। सभी उनका बहुत ध्यान रखते थे, लेकिन आज सभी दोस्त चुपचाप बैठे थे।

एक दोस्त को वृद्धाश्रम भेजने की बात से सभी दुःखी थे, आप सब हमेशा मुझसे पूछते थे कि मैं भगवान से तीसरी रोटी क्यों माँगता हूँ? आज बतला देता हूँ।

कमल ने पूछा–'क्या बहू तुम्हें सिर्फ तीन रोटी ही देती है ?'

बड़ी उत्सुकता से एक दोस्त ने पूछा? नहीं यार! ऐसी कोई बात नहीं है, बहू बहुत अच्छी है।

असल में रोटी, चार प्रकार की होती है।

पहली सबसे स्वादिष्ट रोटी 'माँ की ममता' और 'वात्सल्य' से भरी हुई। जिससे पेट तो भर जाता है, पर मन कभी नहीं भरता।

एक दोस्त ने कहा, सोलह आने सच, पर शादी के बाद माँ की रोटी कम ही मिलती है। उन्होंने आगे कहा हाँ, वही तो बात है।

दूसरी रोटी पत्नी की होती है जिसमें अपनापन और 'समर्पण' भाव होता है जिससे पेट और मन दोनों भर जाते हैं। क्या बात कही है यार ? ऐसा तो हमने कभी सोचा ही नहीं।

फिर तीसरी रोटी किस की होती है? एक दोस्त ने सवाल किया।

तीसरी रोटी बहू की होती है जिसमें सिर्फ कर्तव्य का भाव होता है जो कुछ–कुछ स्वाद भी देती है और पेट भी भर देती है और वृद्धाश्रम की परेशानियों से भी बचाती है, थोड़ी देर के लिए वहाँ चुप्पी छा गई।

लेकिन ये चौथी रोटी कौन सी होती है ? मौन तोड़ते हुए एक दोस्त ने पूछा–

चौथी रोटी नौकरानी की होती है। जिससे ना तो इन्सान का पेट भरता है न ही मन तृप्त होता है और स्वाद की तो कोई गारँटी ही नहीं है, तो फिर हमें क्या करना चाहिये यार?

माँ की हमेशा पूजा करो, पत्नी को सबसे अच्छा दोस्त बना कर जीवन जिओ, बहू को अपनी बेटी समझो और छोटी मोटी गलतियाँ नजरन्दाज कर दो बहू खुश रहेगी तो बेटा भी आपका ध्यान रखेगा।

यदि हालात चौथी रोटी तक ले ही आयें तो भगवान का शुकर करो कि उसने हमें जिन्दा रखा हुआ है, अब स्वाद पर ध्यान मत दो केवल जीने के लिये बहुत कम खाओ ताकि आराम से बुढ़ापा कट जाये, बड़ी खामोशी से सब दोस्त सोच रहे थे कि वाकई, हम कितने खुशकिस्मत हैं।

आशीष सदन,
म.नं. 308, स्कीम नं. 71, सेक्टर–ए,
वैष्णव कन्या महाविद्यालय के पीछे
रणजीत हनुमान, गणेश चौक,
इन्दौर–452009 (म.प्र.) मोबा. 75669 66252

अदबी उड़ान छठा राष्ट्रीय पुरस्कार एवं सम्मान-2021

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी अदबी उड़ान का छठा राष्ट्रीय पुरस्कार एवं सम्मान-2021 का आयोजन दिनांक 17 अक्टूबर 2021, रविवार को उदयपुर में भव्य समारोह के रूप में किया जाना तय है।

क्र. सं.	सम्मान	विधा	राशि
1	अदबी उड़ान बहुआयामी साहित्यकार सम्मान	किसी भी विधा में	5000
2	अदबी उड़ान वरिष्ठ साहित्यकार सम्मान	किसी भी विधा में	3000
3	अदबी उड़ान साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान	साहित्यिक पत्रकारिता	2000
4	अदबी उड़ान ग़ज़ल सम्मान	ग़ज़ल	1000
5	अदबी उड़ान काव्य सम्मान	कविता	1000
6	अदबी उड़ान गीत सम्मान	गीत	1000
7	अदबी उड़ान कहानी सम्मान	कहानी	1000
8	अदबी उड़ान राजस्थानी भाषा सम्मान	राजस्थानी भाषा	1000
9	अदबी उड़ान बाल साहित्य सम्मान	बाल साहित्य	1000
10	अदबी उड़ान नवोदित (महिला) सम्मान	किसी भी विधा में	1000
11	अदबी उड़ान नवोदित (पुरुष) सम्मान	किसी भी विधा में	1000
12	अदबी उड़ान महिला साहित्यकार सम्मान	किसी भी विधा में	1000
13	अदबी उड़ान युगल (पुरुष) साहित्यकार सम्मान	किसी भी विधा में	1000
14	अदबी उड़ान युगल (महिला) साहित्यकार सम्मान	किसी भी विधा में	1000
15	अदबी उड़ान विशिष्ट साहित्यकार सम्मान (10)	किसी भी विधा में	-
16	अदबी उड़ान सम्मान (5)	विशेष उपलबधी	-

रचनाकारों से उपरोक्तानुसार रचनाएं आमंत्रित है। भारत के किसी भी राज्य में रहते हों, हिन्दी की किसी भी विधा में आप अपनी प्रकाशित पुस्तकें (किसी भी वर्ष में प्रकाशित हो)पुरस्कार एवं सम्मान हेतु डाक द्वारा भेज सकते हैं। रचनाकार एक से अधिक श्रेणियों में भी अपनी रचनाएं भेज सकते हैं, पर पुरस्कार एवं सम्मान एक ही विधा में दिया जायेगा।

रचनाकार अपनी प्रविष्ठी हेतु प्रकाशित पुस्तकों की एक ही प्रति भेजें। साथ ही अपना फोटो एवं संक्षिप्त परिचय के साथ ही रु.200/- डाक खर्च, विज्ञप्ति, सम्पर्क साधन, फोटो स्केन, सूचना के आदान-प्रदान हेतु अवश्य भेजें। यह कोई शुल्क नहीं है।

जो रचनाकार पूर्व में भी रचनाएं भेज चुके हैं लेकिन उन्हें पुरस्कार एवं सम्मान नहीं मिला है, वे केवल डाक व्यय भेज दें व हमें सूचित कर दें, उन्हें प्रविष्ठियों में सम्मिलित कर लिया जायेगा। अपनी प्रविष्ठियाँ 30 सितम्बर 2021 तक अवश्य ही भेज दें। पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त करने हेतु समारोह में उपस्थित होना अनिवार्य है। पुरस्कृत सम्मानित रचनाकारों को राशि, शॉल, उपरना, पाग, मोमेन्टों एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जायेगा। यात्रा-व्यय व अन्य व्यय हेतु राशि नहीं दी जायेगी लेकिन उदयपुर में उनके आवास व भोजन आदि की व्यवसथा अदबी उड़ान की होगी।

आप अदबी उड़ान के मुख्य संरक्षकर (रु.7860/-) व संरक्षक (रु. 5000/-) बनकर सहयोग राशि भेजकर अनुग्रहीत कर सकते हैं। सम्मान समारोह में मुख्य संरक्षक व संरक्षक का सम्मान भी किया जाएगा। वे आजीवन सदस्य भी माने जायेंगे। साथ ही पत्रिका के कवर पेज पर उनका रंगीन चित्र परिचय सहित भी प्रकाशित होगा। द्विवार्षिक (रु. 200/-) वार्षिक (रु.150) सहयोग राशि भेजकर सदस्य बन सकते हैं।

सहयोग राशि व डाक खर्च ऑनलाईन भी भेज सकते हैं अथवा गूगल, फोन पे या पेटीएम भी खुर्शीद एहमद शेख के नाम से मोबाईल नं. 9950678815 पर भेज सकते हैं। ऑनलाईन हेतु एसबीआई बैंक हिरण मगरी, सेक्टर-4, उदयपुर (राज.) के खाता संख्या 51004744594 (IFSC Code : SBIN0011406) सेविंग अकाउन्ट में भी जमा करा सकते हैं। उदयपुर वाले सम्पादक को डाक या केश हाथों-हाथ भी जमा करवा सकते है। सम्पादक का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा। आजीवन सदस्यता रु. 1200/-

ख़ुर्शीद शेख़ 'ख़ुर्शीद'

संस्थापक सम्पादक- 'अदबी उड़ान' त्रैमासिक पत्रिका
1 च 16, सेक्टर 4, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.)पिन-313002
मोबाईल-9950678815, 8209106291
ई-मेल khurshidahmedshek45@gmail.com

आपकी अपनी ''आश्वस्त'' हिन्दी मासिक पत्रिका अब यूजीसी केयर लिस्टेड हो चुकी है।

समस्त साहित्यकार, लेखक, पाठक, समाज वैज्ञानिक, शोधार्थी अधिक जानकारी के लिए निम्नांकित वेबसाईट और ई–मेल पर संपर्क करें ।

UGC Care Listed Journal

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021–2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734–4000030 से मुदित एवं 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734–2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार